साक्षी रहना तुम

स्वीकारें

☐

[illegible] बारे मे क्या निवेदन करूँ ! यह कहानी, अनदेखा एक क्षण है तो भोगा हुआ सत्य भी । एक अनजिये यथार्थ को तलाशते अरसा हो चला था । ये तलाश कभी नई ज़मीन से टकराती, तो कभी नये आसमान छू लौट आती । इसी बीच एक सुबह सूर्यहीन आकाश सहसा धुँआ-धुँआ सा हो उठा । उसके बीच एक ऐसा चेहरा उभरा जो न कभी देखा था, न सुना था । हवाओ मे संगीत गूँजने लगा, दिशाऐ थिरकने लगीं और आँखें गाने लगीं ।

तीस साल पहले भाई उमरावसिंह मंगल (अब स्वर्गीय) ने एक अतीव सुन्दरी रसकपूर की चर्चा की थी । सुश्री वीणापाणि रस्तोगी ने मुझे एक पुस्तक भी दी । पिछले दिनो, श्री आनन्द शर्मा ने फ़िर रसकपूर की याद को ताजा कर दिया । मेरे अवचेतन में कहीं अधसोई रसकपूर सहसा कसमसाकर जाग उठी । मेरी रातें जगने लगीं, दिन उनींदे हो चले ।

यह कथा नारी मन की महत्वाकांक्षा और सर्वोच्च शिखर तक पहुँचने की उसकी यात्रा का जहाँ वृत्तान्त प्रस्तुत करती है वहाँ उसके निश्च्छल स्नेह और सहज समर्पण को भी उजागर करती है । यह कथा प्रेम के उस सर्वश्रेष्ठ पारदर्शी रूप का प्रतिबिम्ब है जहाँ जाति, धर्म, वर्ग, सम्प्रदाय बहुत बौने हो जाते हैं । जहाँ केवल हृदय का अनन्त साम्राज्य शेष रहता है ।

यदि रसकपूर की भाग्य रेखा उसे जयपुर के राजघराने तक न ले गई होती तो सभव है, सौन्दर्य की वह साक्षात् आकृति, महाकाल के क्रूर हाथो द्वारा किन्हीं गुमनाम गलियो में दम

तोड़कर समय की उड़ती हुई धूल की चादर ओढ़कर, सो गई होती। इसलिए संभव है, इस कथा में अनायास कहीं इतिहास भी आकर झाँक गया हो।

इस कहानी को लिखते समय मेरे कथा-शिल्पी ने किसी भूमिका का निर्वहन नहीं किया है। मेरा कवि अवश्य जागता रहा है। इस प्रकार यह कहानी, वास्तव में, जागी आँखों देखा हुआ एक सपना है।

'क़तरा क़तरा रोशनी' के बाद इस सपने को आप तक पहुँचाने का फिर दायित्व सम्हाला है भाई रमेश वर्मा ने। सहज स्नेह के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना स्नेह का असम्मान है। और मैं ऐसा नहीं करूँगा।

आपको यह सपना जगा सके, गुदगुदा सके, कभी नम भी कर सके तो मैं इसे अपना सौभाग्य मानूँगा। वास्तव में, 'साक्षी रहना तुम' निस्वार्थ प्रेम का अमर साक्षी है, इसे इसी रूप में आप स्वीकारें।

—डॉ. भगवतशरण चतुर्वेदी

26 ए, केशव नगर,
सिविल लाइन्स, जयपुर-19

साक्षी रहना तुम

चन्द्रमहल–आसमान का घटता–बढ़ता और धरती के खिलते–महकते चाँद जिसके आँगन में रात–दिन अपनी चाँदनी बिखेरे रहते–आजकल गुमसुम, उदास और अलसाया सा लगता। चन्द्रमहल का प्रखर सूर्य रोग–शैया पर था। गुलाबों को, अपने गालों की छाया से, गुलाब बनाने वाला स्वयं पीला पड़ गया था।

महाराज जगतसिंह की शैया के चारों ओर रानियाँ ऐसे खड़ी थीं जैसे तेल–बाती युक्त दीपशिखाऐं प्रकाश की एक किरण पा, जल–खिल उठने को, आतुर हों। वे महाराज के दृष्टि–प्रसाद के लिए व्यग्र थीं।

महाराज आँखे मूँदे लेटे हुए थे। उनके निकट उनकी पटरानी भटियाणी व्याकुल मन बैठी हुई थीं कि प्रतिहारी ने राजवैद्य के आने की सूचना दी। सभी रानियाँ, बोझिल मन, वहाँ से चली गईं।

राजवैद्य ने आकर महारानी को प्रणाम् किया। राजवैद्य की आवाज़ सुन महाराज ने धीरे से अपनी पलकें उठाईं। राजवैद्य, आदर में, आधे झुक गये।

महाराज ने सवाली नज़रो से उन्हें देखा।

राजवैद्य ने अपना उत्तरीय सम्हालते हुए कहा–

अन्नदाता ! मुझे पूरा विश्वास है, आप शीघ्र ही स्वस्थ हो जायेंगे ।

महाराज अनबोले सिर्फ़ उन्हें देखते रहे ।

राजवैद्य ने उसी स्वर में कहा– मैं सच कह रहा हूँ, महाराज ! इस बार जो औषधि मैंने तैयार की है, वह आपके रोग का अक्सीर इलाज है ।

महाराज ने एक उचटती निगाह पटरानी पर डाली ।

पटरानी बोलीं– वैद्यराज ! महाराज की हालत दिनों-दिन बिगड़ती जा रही है और एक आप हैं कि सिर्फ़ दवाइयाँ खोज रहे हैं ।

–अपराध क्षमा हो, महारानीजी ! मैं महाराज को इतनी तीव्र औषधि नहीं देना चाहता था किन्तु अन्ततः यह प्रयोग करना ही पड़ा । राजवैद्य ने हाथ जोड़कर कहा ।

महाराज की निगाहें राजवैद्य के चेहरे पर आकर टिक गईं ।

राजवैद्य ने, वैसे ही, हाथ जोड़े कहा– अन्नदाता ! पारे का शोधन कर मैंने ऐसी अचूक औषधि बनाई है जो निश्चित से आपको स्वस्थ कर देगी ।

महाराज ने संकेत से औषधि के बारे में पूछा ।

राजवैद्य ने इशारा समझते हुए कहा– इसे आयुर्वेद में, अन्नदाता ! रसकपूर कहते हैं ।

–क्या.....क्या ? पहली बार महाराज के ओठों से स्वर फूटे । उनकी आँखें डबडबा गईं ।

महारानी ने संकेत से राजवैद्य को बाहर चलने के लिए कहा । बाहर पहुँचते ही वे चीखीं– राजवैद्य ! ये आपने क्या कर दिया ! क्या कह दिया आपने महाराज को ?

राजवैद्य ने सिर झुकाते हुए कहा– मैं माफ़ी चाहता हूँ,

महारानीजी ! मैने तो केवल औषधि का नाम लिया था । मुझे क्या पता था कि इतने दिनों बाद भी महाराज के मन–मस्तिष्क में यह नाम कहीं अमरबेल की तरह छाया हुआ था । प्यार अमरबेल ही होता है जो बिना जल–मूल के पनपता रहता है ।

–क्या बकवास कर रहे है आप, वैद्यराज ! आपने सारा किया–कराया चौपट कर दिया । हथेली का हल्का सा साया हटाते ही, कितना भी साहसी दीपक क्यों न हो, तूफ़ान में बुझ जाता है । आज आपने वो साया सरका दिया ।

–मैं लज्जित हूँ, महारानीजी ! ये ग़लती मुझसे अनजाने मे हो गई । राजवैद्य कुछ और भी कहते लेकिन महारानी महल के अन्दर झाँककर महाराज की हालत देखने को पलट चुकी थीं । राजवैद्य भी उनके पीछे हो लिये ।

महारानी ने देखा कि महाराज धीरे–धीरे अपनी शैया पर, सहारा लगाकर, बैठे हुए खिड़की की राह आ रही चाँदनी की बाँह पकड़े दूर खड़े सुनसान सुदर्शनगढ़ को देख रहे थे । कुछ क्षणों बाद वे एक लम्बी साँस लेकर, धीरे से, बुदबुदाये– रसकपूर ! रु.....प.....को.....षा !

उनकी आँखों के आगे बना धुँधला चित्र धीरे–धीरे साफ़ होता चला गया । घनी दाढ़ी वाले चेहरे पर शायद बहुत दिनो बाद कोई रंग आया था । उन्होने पलकों की खिड़कियाँ बंद करलीं ।



मदिरा का प्याला हाथ में थामे, रतनारे नैनों से नर्तकी की ओर देखते हुए महाराज ने पूछा– रसकपूर ? कौन रसकपूर ?



–आपकी प्रजा है माई–बाप ! वो चलती है तो कलियाँ चटख़ती हैं। देखती है तो मयख़ानों के ताले टूट जाते हैं। गाती है तो साँसें थम जाती हैं और नाँचती है तो धरती आसमान बन जाती है। बिना बादल बिजली सी टूटने लगती है।

महाराज ने तनिक मुसकरा कर उस नर्तकी का हाथ थामते हुए कहा–इसीलिए लोग कहते हैं ज़्यादा नशा ठीक नहीं। अगर समुन्दर का ऐसा कोई नायाब मोती बहता हुआ हमारे किनारे आ लगा तो अभी तक वो हमारे हुज़ूर में पेश क्यों नहीं किया गया ?

–सीपी का मुँह अपने आप खुलने पर जो मोती निकलता है, वही, अन्नदाता ! सिर पर चढ़कर राजमुकुट की शोभा बढ़ाता है।

–हम समझे नहीं।

जान बख़्शी फ़रमायें, हुज़ूर ! नाचीज़ उसकी पोर–पोर में रस भर जाने के लम्हे का इंतज़ार कर रही थी। कल आसमाने–हुस्न का वो आफ़ताब, पहली बार, अपनी रोशनी से बेशुमार धड़कते दिलों को रोशन करेगा। अन्नदाता ! कल उसका पहला मुजरा है और उसके बाद, दीदार के लिए ज़माने की आँखें तरस जायेंगी।

–नहीं, पारो ! नहीं, हम इतने ख़ुदग़र्ज नहीं। यदि मालिक ने उसे इतना बेपनाह हुस्न दिया है तो हम उसकी रोशनी को क़ैद नहीं करेंगे। हम.......हम ......शायद हमें नशा होने लगा है .... हम उसें अपने दिल की ही नहीं इस रियासत की मलिका बना देंगे। महाराज ने पारो को खींचकर अपनी गोद में बिठाते हुए कहा।

–सच है, अन्नदाता ! जौहरी की नज़र न पड़े तो हीरा पत्थर की जगह भी काम में नहीं आता। पारो ने उठते हुए, झुककर, आदाब पेश करते हुए कहा।



तमाम शहर गहमा–गहमी से भरा हुआ था। राव, राजे, ठाकुर, सामन्त, दरबारी और नगर के श्रेष्ठिजन सब एक ही राह पर बढ़े जा रहे थे। आज रसकपूर का पहला मुजरा जो होना था।

रसकपूर –– जो छूने में मीठी लगती और देखने में गंध का सागर। जिसे टटोलकर चाँदनी चमक उठती। हवा नाँचने लगती। कलियाँ खिल–खिल जातीं और फूल क़दमबोसी के लिए अपने आप टूट–टूट पड़ते। जिसके साये में पलकें झपकना भूल जातीं। धड़कनें धड़कना बंद कर देतीं। रसकपूर जिसमें जीवन का रस और यौवन का कपूर एक साथ घुल–मिल गया था। रसकपूर गोया मुजस्सम हुस्न, बेहिसाब ख़ुमार और बेपनाह मौहब्बत की ऐसी चलती–फिरती तस्वीर जिसे एकबार भरपूर निगाहों से देखनेवाला ज़िन्दगी में फिर और कुछ देखने लायक नहीं रहता। रसकपूर कुदरत का ऐसा बेमिसाल तोहफ़ा था जो यक़ीनन सदियों में एकबार कभी दुनिया को नसीब होता है और अपनी उस ख़ुशकिस्मती की गवाही के लिए लोग बेतहाशा भागे जा रहे थे।

हर आने वाले का गरम जोशी से, झुककर, आदाब पेश करते हुए, नूरी बेग़म स्वागत कर रही थी! महफ़िल सजी हुई थी। रसकपूर के आँगन में खुशबुओं का सैलाब उमड़ा पड़ रहा था। साजिन्दे हवाओं में संगीत के सुर उछाल रहे थे और नशीले हाथ जामों में जवानी ढ़ाल रहे थे। क्या नज़ारा था! परवाने फड़फड़ा रहे थे। जलकर मर मिटने के लिए बेताब थे लेकिन अभी तक महफिल को शमाँ ने अपनी तपिश से गरमाया नहीं था।

तभी किसी जागीरदार ने अपना कंठहार उतार कर फैंकते हुए कहा– नूरी बेग़म! सब्र का प्याला छलकने वाला है। अब

और इंतज़ार मुमकिन नहीं।

नूरी बेग़म झुककर कुछ अर्ज़ करने को हुई कि सामने का रेशमी पर्दा हिला और महफ़िल में आग लग गई। श्रृंगार शरमा कर लजा गया। हुस्न पानी-पानी हो गया। जवानी कसमसा कर बेहोश हो गई। पूरी महफ़िल खड़ी हो गई। कोठे की रिवायत बदल गई। रसकपूर आदाब पेश करती कि उससे पहले सारी महफ़िल उसके इस्तकबाल के लिए झुक गई।

नूरी बेग़म, ठगी सी, कभी महफ़िल को देख रही थी, कभी अपनी बेटी को। उसकी आँखों में चाँद-सूरज चमक उठे थे। रसकपूर आगे बढ़ी, उसके नूपुर बजे तो लोगों की सुधि लौटी। वे सब अपनी-अपनी जगह बैठ गये। आँखों के सैंकड़ों दिये अनझपके जल रहे थे और तेज़ सासों का शोर सिर्फ़ रसकपूर का नाम पुकार रहा था। दीवानगी में कभी-कभी शोर भी सुहाना लगता है।

रसकपूर ने मुसकराते हुए महफ़िल पर एक ढ़की नज़र डाली तो लोगों के हाथों से जाम अपने आप छिटक कर दूर जा गिरे। रसकपूर के घुँघुरुओं की आवाज़ तेज होने लगी और दर्शकों की धड़कनें मंद पड़ने लगीं। रूप का बेज़ुबान नशा लोगों के सिर चढ़ने लगा।

रसकपूर गा रही थी, नाँच रही थी और वहाँ बैठा हर आदमी तन, मन, धन और ईमान से लुट रहा था।

रसकपूर के थिरकते पाँव थमे तो लगा वहाँ सिर्फ़ भिखारियों की भीड़ रह गई थी जो जाती हुई उस रूपकोषा रसकपूर की एक झलक पाने के लिए एक-दूसरे के कंधों पर चढ़ने की कोशिश कर रही थी।



दरबार भरा हुआ था। सारे सभासद, दरबारी, राव, राजे, ठिकानेदार अपने–अपने आसनो पर बैठे हुए थे लेकिन लगता था जैसे वहाँ कोई नहीं था। इबादत में, कभी–कभी, पुजारी की शक्ल परमात्मा से मिल जाती है। वहाँ लोग बैठे हुए तो थे लेकिन सब खोये–खोये, अपने अपनों से अनजाने। किसी ने दबी ज़ुबान में कहा– रसकपूर क्या है, जिन्दगी की धड़कन है और सारा दरबार रसकपूर के नाम से गूँज उठा।

यही क्षण था जब महाराज ने दरबार मे प्रवेश किया। रसकपूर का नाम सुन महाराज सकते में आ गये। उन्हें पारो की कही बात सहसा याद हो आई। महाराज सामने खड़े थे और कोई दरबारी अपने स्थान से खड़ा नहीं हो सका। रुप की खुमारी यक़ीनन हर नशे से तेज़ होती है। प्रतिहारी ने महाराज के पधारने की बात जब दुहराई तो दरबार पर बिजली सी गिर पड़ी। सारे सभासद एक साथ उठ खड़े हुए। शर्म से उन की गर्दनें झुक गईं और पलके मुँद गईं। गुनाह का लम्हा यदि उजागर हो जाए तो अनचाहे भी पलके तो झुक ही जाती है। सारे सभासद अपने गुनाह को महसूस कर रहे थे। महाराज मंथर गति से चलते हुए सिंहासन तक पहुँचे और बैठ गये। वे खड़े हुए दरबारियों को अचरज भरी निगाह से देख रहे थे। उन्हे लगा, उनका जीवन्त दरबार जैसे निर्जीव हो गया हो।

महाराज गंभीर स्वर में बोले– आप सभी अपना स्थान ग्रहण करे।

महाराज की वाणी सुन दरबार चेतन हुआ। सब लोग बैठ गये।

महाराज ने मुस्कराते हुए पूछा– यह रसकपूर कौन है ?

सारे सभासदों को साँप सूँघ गया। किसमें सामर्थ्य थी

जो महाराज के इस प्रश्न का उत्तर दे पाता । कभी–कभी सहज प्रश्न भी बड़ी असहज स्थिति उत्पन्न कर देते हैं । आदमी जानते हुए जब अनजान बनने का अभिनय करता है तो बड़ा निरीह हो जाता है ।

महाराज अपने प्रश्न का उत्तर पाने के लिए उचटती निगाहों से सबको देखते जा रहे थे कि अचानक दरबार के वरिष्ठ सभासद उठ खड़े हुए । उन्हें खड़ा देख महाराज हँसते हुए बोले– मिश्रजी, आप ? फ़रमायें ।

अपना गला खँखारते हुए, अपने को संयत करते हुए, मिश्रजी ने कहा– अन्नदाता ! रसकपूर आपकी रियासत की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी, नर्तकी और गायिका है ।

–इतना हम जानते हैं, मिश्रजी ! उसकी कोई विशेषता हो तो बतायें । महाराज ने तनिक मुसकराते हुए कहा ।

सारे दरबारियों की आँखें अचानक मिश्रजी के चेहरे पर जा टिकीं ।

मिश्रजी ने आँखें झुकाते हुए कहा– अन्नदाता ! वो पानी पीती है तो गले में दिखाई देता है । वो पान खाती है तो ओठ और पान का रंग अलग पहचानना मुश्किल हो जाता है । वो गाती है तो सारा आलम झूमने लगता है और नाँचती है तो आसमान सिर को छूता हुआ सा लगता है ।

–वाह ! वाह ! मिश्रजी ! हम नहीं जानते थे कि आप इतने अच्छे कवि भी हैं । महाराज ने खड़े होते हुए कहा । सारा दरबार उठ खड़ा हुआ ।

मिश्रजी ने धीरे से कहा– कुदरत के करिश्मे से कभी–कभी हक़ीक़त भी ख़्वाब सी लगने लगती है, अन्नदाता !

महाराज चले गये, बिना कुछ कहे ।

पहली बार दरबारियों ने दिन के उजाले में महाराज की चाल में लड़खड़ाहट देखी ।



मिश्रजी जब जनानी डोली से उतरे तो सामने खड़ी लड़की खिलखिलाकर हँस पड़ी । वो बोली– हुज़ूर ! दिन के उजाले में और वो भी जनाने डोले में ?

उसे अँगुली से चुप रहने का इशारा करते हुए मिश्रजी सीढ़ियाँ चढ़ गये ।

नूरी बेग़म ने जो मिश्रजी को देखा तो उसके हाथों से सुपारी काटता हुआ सरौता छिटक कर, धरती पर जा गिरा । उसकी अँगुली पर लाल बूँद उभर आई । अपनी ओढ़नी से उसे पोंछती हुई, खड़ी होकर, जैसे ही वो आदाब के लिए झुकी, मिश्रजी ने उसकी बाँह पकड़, उसके मुँह को ऊपर उठाते हुए कहा– बेग़म, मैं तो कन्यादान कर आया । जो किसी बाप ने अपनी बेटी के लिए आजतक नहीं किया, आज मै वो कर आया हूँ ।

–मैं समझी नहीं, मेरे सरताज ! तशरीफ़ तो रखिये । नूरी ने मसनद को ठीक करते हुए कहा ।

बैठते हुए मिश्रजी ने पूछा– रसकपूर कहाँ है ?

–अभी तक सो रही है, हुज़ूर । कल रात बहुत देर जो हो गई थी ।

–कल की रात ने ही तो क़हर ढ़ा दिया, बेग़म ! सारा शहर तुम्हारी बेटी की ख़ुशबू से मदहोश हो गया है और महाराज उसकी सूरत देखने को बेताब । मैं उस बेसब्री को और बढ़ा आया हूँ ।

–आप बढ़ा आये ?

–हाँ, बेग़म ।

इस बीच रसकपूर भी पर्दे के पीछे आकर खड़ी हो गई थी ।

नूरी ने अपने माथे पर हाथ रखते हुए कहा– ये क्या किया आपने ? बोलिये, ऐसा क्यों किया ? इससे तो अच्छा होता अपने हाथों, अपनी बेटी का गला घोंट देते।

अपनी माँ की बात सुन रसकपूर गिरते–गिरते बची। उसे चक्कर आ गया। अनहोनी को सामने देख आँखें बरबस फैल जाया करती हैं। रसकपूर के दिल में तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। क्या वह मिश्रजी की बेटी है ! क्या, सचमुच, मिश्रजी उसके पिता हैं ? तभी तो वो बचपन से उसे इतना प्यार करते रहे हैं। उसे याद आया जब वे लाड़ से उसके सिर पर हाथ फेरते थे और कभी–कभी भरी आँखों से उसका माथा चूमते थे। उन्होंने ही तो पढ़ाने के लिए पंडित और मौलवी लगाये थे। नाँच और गाना सिखाने के लिए बेहतरीन उस्ताद भिजवाये थे।

रसकपूर ने सिर झटका तो उसने सुना, उसकी माँ कह रही थी– मैं उफ़ तक न करती अगर उसके बाप के हाथों में वह दम तोड़ देती लेकिन सोने के पिंजरे में उसे क़ैद होते मैं नहीं देख सकती, नहीं देख सकती, मेरे मालिक ! नूरी भावावेश में न जाने क्या–क्या कहती चली गई।

मिश्रजी ने नूरी को पास बिठाते हुए कहा– बेग़म ! रसकपूर हमारे पवित्र प्यार की निशानी है। लेकिन मैं खुले तौर पर, सरे आम, समाज में उसे अपनी बेटी नहीं कह सकता।

–मैं जानती हूँ।

–और, नूरी ! मैं यह भी सहन नहीं कर सकता कि भूखी आँखें, अपनी नज़रों से, उसके लिबास को तार–तार करने की कोशिश करें। असहाय को दुनिया टुकड़ों–टुकड़ों में मारती है।

–लेकिन, इसका मतलब ....

–इसका मतलब यही है कि वो किसी मज़बूत सहारे के साये में रहे।

–और वो साया महल के अलावा नहीं हो सकता ?

–कोठे का चंदन माथे की शोभा नहीं बनता । नूरी बेग़म ! और कौनसी जगह हो सकती है, उसके लिए ?

–क्या उसके हाथ पीले नहीं हो सकते ?

–हाथ तो पीले हो जाएँगे लेकिन ज़माने भरके ताने सुनकर जब वो पीली पड़ जाएगी तब क्या होगा ?

–तो आप क्या समझते हैं, महलों में वो गुलाब ही बनी रहेगी !

–यक़ीनन ! महाराज रूप के रसिक है और हमारी रसकपूर तो रूप का सागर है । उस सागर का पार पाना महाराज के लिए संभव नहीं । वो राज करेगी वहाँ । मिश्रजी ने बहुत विश्वास के साथ कहा । कभी–कभी आँखों की धुँधली रोशनी भविष्य के पार भी वही देख लेती है, जो वह देखना चाहती है । और यही देखना उम्र को दर्द के कगार पर छोड़ देता है ।

रसकपूर, धीरे से, अंदर चली गई । शायद उसकी ऑखो में सपने तिरने लगे थे । सपने भी ज़रूरी होते हैं । स्वप्नहीन आँखों से अधिक सूनी जगह संसार मे और कोई नहीं होती । सपने ऑखों को चमक देते है । सपने ऑखों में ख़ुशबू उँडेल देते है । सपने ज़िन्दगी को गुलिस्तान बना देते हैं । कभी–कभी सपने आदमी को भी सपना कर देते हैं ।

रसकपूर की एक आँख मुसकरा रही थी और दूसरी भरी–भरी सी लग रही थी । लगता था, मिलन और बिछोह जैसे गले मिल रहे हों ।

नूरी बेग़म ने धीरे से कहा– मैंने तो अपनी ज़िन्दगी आपके नाम कर दी है, मेरे मालिक ! जैसा आपको अच्छा लगे, करे ।

मिश्रजी ने उसके कंधों को थपथपाते हुए कहा– बेग़म ! मुझे यक़ीन है, महाराज अपनी बेटी को आज ही बुलवा भेजेंगे ।

–इतनी जल्दी ?

–महाराज की उतावली से तो ऐसा ही लग रहा था। इतना कहकर मिश्रजी ने दरबार का पूरा किस्सा नूरी को सुना दिया।

मिश्रजी बोले– इसीलिए तो मैं दिन के उजाले में छिपते–छिपाते, पर्देवाली जनानी डोली में बैठकर तुम्हें यह ख़बर देने चला आया।

–जैसी मालिक की मर्ज़ी। हमारी बेटी की तक़दीर में जो लिखा है उसे कौन टाल सकता है ? एक लम्बी साँस छोड़ते हुए नूरी ने कहा।

–तुम निश्चिन्त रहो, बेग़म। मुकद्दर से मौक़े तो मिल सकते हैं, मौक़ों की वफ़ादारी नहीं। मैं जानता हूँ, रसकपूर के हाथ आया मौका उसका वफ़ादार भी रहेगा।

–मेरा दिल तो बहुत घबरा रहा है। बड़े–बड़े किस्से सुने हैं मैंने इन महलों के। एक रात की रानी ज़िन्दगी भर दासी बनकर जीती है।

–कैसी बातें कर रही हो, बेग़म ! जिसके चलने से फ़र्श का दिल धड़कने लगता है, तुम उस रसकपूर की माँ हो। तुम्हारी बेटी के सामने बड़े–बड़े सूरमाओं की गर्दनें ख़म होंगी। उठते हुए मिश्रजी बोले– अच्छा बेग़म, अब मैं चलता हूँ, रात चढ़े आऊँगा।

और नूरी ने झुककर अपना दायाँ हाथ अपने माथे से लगा लिया।

महाराज दरबार से तो उठकर आ गये लेकिन महल में जाकर भी वे बैठ नहीं पाये। पता नहीं कितनी देर तक वे अनमने से, अकारण टहलते रहे। ऐश्वर्य अभिमान तो दे सकता है, मन का चैन नहीं। रूप की चर्चा कभी-कभी आदमी को बहुत कुरूप बना देती है। अजीब सी उलझन में झूल रहे थे महाराज। परिचारिकाऐं परेशान, दास-दासियाँ हैरान और महाराज मन के हाथों लहू-लुहान।

पारो की बात तो वे कभी की झटक चुके थे। वे कोठेवालियो की तहज़ीब और बात करने के सलीक़े को पहचानते थे। बिना वजूद के आसमान खड़ा कर देने वालो की बात का यक़ीन करना, यक़ीन का गला घोटना है। आँखों से काजल चुरा लेने वाले अपनी आँखो में कभी काजल नहीं आँजते। कमज़र्फ इन्सान की मुट्ठी मे समुन्दर नहीं समाता और, बुद्धि से बौने लोग हमेशा तनकर चलते हैं।

महाराज जानते थे कि पारो का कोई कसूर नहीं है। वह आँखो मे काजल नहीं लगाती। वो एक पस्त हौसला औरत दिमाग़ से बहुत बौनी है। लेकिन महाराज यह भी जानते थे कि *बदसूरत औरत भी किसी दूसरी औरत की खूबसूरती की तारीफ़* नहीं करती। औरत की निगाहें सिर्फ नुक्स निकालने में माहिर होती हैं। लेकिन पारो ने किसी नाज़नीन की तारीफ़ की थी और वो भी बेइन्तहा।

महाराज टहलते-टहलते रुक गये। उनके सामने दरबार का दृष्य घूम गया। सारा दरबार रसकपूर के नाम का दीवाना सा लग रहा था और मिश्रजी---मिश्रजी तो अपने दिल के जज़्बात ज़ब्त ही नहीं कर सके थे।

महाराज ने ताली बजाई। झुकी निगाहें सामने खड़ी थीं। महाराज ने बिना देखे ही कहा- पारो को हाज़िर करो।

एक क्षण के लिए महल में हड़कम्प मच गया। सिर पर पाँव धरे, पाँव भाग रहे थे और अगले ही क्षण पलकें झुकाये पारो हुज़ूर के हुज़ूर में हाज़िर थी।

महाराज बोले– पारो !

–जी, अन्नदाता !

–तुम्हें याद है, तुमने क्या कहा था !

–कनीज़ भला भूल सकती है, अन्नदाता !

–हम उसे रानी बनाकर बुलाना चाहते हैं।

–हुज़ूर की समुन्दर दिली है।

–मोती को समेटने के लिए समुन्दर बनना ही पड़ता है।

–दो दर्जन घुड़सवार सजे हुए घोड़ों पर हों।

–हुज़ूर !

–मखमल की पालकी में चाँद–सितारों को जड़दो। हीरे, जवाहरात के थालों को लवाज़मे के साथ ले जाओ। बेशुमार मखमली पोशाक ऐसी हों जिससे उसके रेशमी जिस्म पर खरोंच न आए। अशर्फ़ी की बौछारों में पालकी महलों तक पहुँचे।

–कनीज़ हुज़ूर के दिल को जानती है। हर काम को उसी तरह अंजाम दिया जाएगा, जैसा अन्नदाता चाहते हैं।

महाराज के गले का बेशकीमती हार पा पारो निहाल हो गई।



रसकपूर की मुसकराती आँख भी सहसा भर आई। अब उसकी दोनों आँखों मे बादल घिर आये थे। बादलो का क्या–कभी सूरज को ढाँप लेते हैं तो कभी उम्मीद के चिराग को।

रसकपूर को कभी नाँचने–गाने का शौक़ नहीं रहा। वो गला गरम करती और ख़ुद ठंडी पड़ जाती। वह ज़िन्दगी को पूरे मन से जीना चाहती थी, किसी की होकर और किसी को अपना बनाकर। उसे कोठे के संस्कारों से परहेज़ था। आज का आदमी बिना कोठे पर रहे भी उन्ही संस्कारो में जीने का आदी हो गया है। बनावट, छल, फ़रेब और दिखावटी हँसी फेंककर स्वार्थ पूरा करने की संस्कृति उसके तन–मन में समा गई है। प्यार की इन्तहा बिछने में है, सिमटने में नहीं। प्यार न्यौछावर होने का नहीं, बलिदान का नाम है और रसकपूर ऐसे ही बलिदान के स्वप्न देखती थी।

वो बहुत देर तक पलंग पर लेटी रही। उसकी आँखों के टूटे मोती, गालों को भिगोते हुए, तकिये पर जाकर सो गये। उसके दहकते गालों की आग और बढ़ गई थी। कभी–कभी पानी भी ऐसी आग लगा देता है जिसमें सब कुछ जल जाता है। गीले तकिये ने रसकपूर को चौंकाया तो वह उठकर बैठ गई।

उसका पिता सामने था लेकिन वो उसकी बेटी नहीं थी। वो उनके गले मिलकर रो नहीं सकती थी। और उसका वही बाप उसे अंधे कुए में डाल रहा था। शायद खरोचो से बचाने के लिए और एक कमरे मे बंद होकर, धीरे–धीरे, घुलते हुए मौत के आने का इंतजार करने के लिए।

कैसे दोराहे पर खड़ी थी रसकपूर!

राजमहल का अनदेखा आकर्षण उसके मन को गुदगुदा

रहा था और बचपन से देखे प्यार के सपने, झाला देकर, उसे अपनी ओर बुला रहे थे। भोगे हुए क्षण और सपनों की अनदेखी दुनिया का वैसे तो मेल नहीं हो पाता लेकिन इनसे पैदा हुई असमंजस की धारा इनका संगम करा ही डालती है।

रसकपूर ने सोचा कि महलों में प्यार नहीं पनप सकता। पहरे के बीच प्यार नहीं पलता। वह उठी और सीधी अपनी माँ के पास जा पहुँची। माँ ने उसे देखा तो काँप सी उठी। उसकी भरी-भरी आँखें देख, माँ की आँखें भी छलछला आईं। आँख कितनी ही बेरहम हो, आँसू तो अपना रिश्ता निभाता ही है। माँ उठी तो रसकपूर उसके गले लग सिसक उठी। माँ उसका सिर सहलाने लगी कि सीढ़ियों पर आहट सुन नूरी ने अपने आँचल से रसकपूर की आँखें पौंछदीं। दरवाज़ा खुला तो सामने चंदन था।

चंदन को देख रसकपूर के पाँवों तले ज़मीन खिसक गई। चंदन उसका पहला प्यार था, उसकी आशाओं का ध्रुवतारा, उसके दुख का साथी, बचपन में खाई कसमों का साक्षी, उदासी के क्षणों का सहयात्री, उसके सपनों का जुलाहा और मन ही मन मान लिया गया उसका सर्वस्व। उसने चंदन को एकबार फिर देखा और अंदर भाग गई।

चंदन कोठे से तो परिचित था लेकिन वहाँ की सभ्यता से नहीं। वो धीरे से बोला- अम्मीजान ! मुझे बहुत डर लग रहा है।

नूरी ने अपनी आँखें पौंछते हुए कहा- क्या बात है, बेटे !

-पूरे शहर में बस रसकपूर के नाम की ही चर्चा है।

-फिर ?

-उसका मुजरा देखने के बाद लोगों पर दीवानगी छा गई है।

–तो ?

–मुझे तो ये आसार ठीक नहीं लग रहे ।

–तुम बच्चे हो, बेटे !

–नहीं, अम्मीजान ! मुझे तो लगता है, रसकपूर को कोई छीन लेगा ।

–किससे ?

–मुझसे––और––और आपसे ।

–नहीं, बेटे ! भला, ऐसा कैसे होगा ?

–मैं सच कह रहा हूँ, अम्मीजान ! मैं चाहता हूँ कि रसकपूर को मैं अपने साथ कहीं दूर ले जाऊँ ।

–फिर क्या होगा ?

–फिर, चैन से तो रह लेंगे, इस भय और आशंका से दूर ।

नूरी कुछ कहती कि एक लड़की ने आकर चंदन से कहा– आपको अंदर बुलाया है ।

और चंदन भागता सा अंदर चला गया ।

रसकपूर पलंग पर लेटी सूनी निगाहों से छत को देख रही थी ।

चंदन ने धीरे से कहा– कभी-कभी छत को टकटकी लगाकर देखते रहने से छत छाती पर आ गिरती है ।

रसकपूर ने उठते हुए कहा– मैं क्या करूँ, चंदन ! मुझे बचालो, चंदन !

–तो भाग चलो मेरे साथ । रसकपूर, ज़माना बड़ा ज़ालिम है । ये तुम्हें मुझसे जबर्दस्ती छीन लेगा और किसी अंधी खाई में फैंक देगा ।

–ऐसा क्यों सोचते हो ?

रहा था और बचपन से देखे प्यार के सपने, झाला देकर, उसे अपनी ओर बुला रहे थे। भोगे हुए क्षण और सपनों की अनदेखी दुनिया का वैसे तो मेल नहीं हो पाता लेकिन इनसे पैदा हुई असमंजस की धारा इनका संगम करा ही डालती है।

रसकपूर ने सोचा कि महलों में प्यार नहीं पनप सकता। पहरे के बीच प्यार नहीं पलता। वह उठी और सीधी अपनी माँ के पास जा पहुँची। माँ ने उसे देखा तो काँप सी उठी। उसकी भरी-भरी आँखें देख, माँ की आँखें भी छलछला आईं। आँख कितनी ही बेरहम हो, आँसू तो अपना रिश्ता निभाता ही है। माँ उठी तो रसकपूर उसके गले लग सिसक उठी। माँ उसका सिर सहलाने लगी कि सीढ़ियों पर आहट सुन नूरी ने अपने आँचल से रसकपूर की आँखें पौंछदीं। दरवाज़ा खुला तो सामने चंदन था।

चंदन को देख रसकपूर के पाँवों तले ज़मीन खिसक गई। चंदन उसका पहला प्यार था, उसकी आशाओं का ध्रुवतारा, उसके दुख का साथी, बचपन में खाई कसमों का साक्षी, उदासी के क्षणों का सहयात्री, उसके सपनों का जुलाहा और मन ही मन मान लिया गया उसका सर्वस्व। उसने चंदन को एकबार फिर देखा और अंदर भाग गई।

चंदन कोठे से तो परिचित था लेकिन वहाँ की सभ्यता से नहीं। वो धीरे से बोला- अम्मीजान ! मुझे बहुत डर लग रहा है।

नूरी ने अपनी आँखें पौंछते हुए कहा- क्या बात है, बेटे !

–पूरे शहर में बस रसकपूर के नाम की ही चर्चा है।

–फिर ?

–उसका मुजरा देखने के बाद लोगों पर दीवानगी छा गई है।

–तो ?

–मुझे तो ये आसार ठीक नही लग रहे।

–तुम बच्चे हो, बेटे !

–नहीं, अम्मीजान ! मुझे तो लगता है, रसकपूर को कोई छीन लेगा।

–किससे ?

–मुझसे––और––और आपसे।

–नहीं, बेटे ! भला, ऐसा कैसे होगा ?

–मै सच कह रहा हूँ, अम्मीजान ! मैं चाहता हूँ कि रसकपूर को मै अपने साथ कहीं दूर ले जाऊँ।

–फिर क्या होगा ?

–फिर, चैन से तो रह लेंगे, इस भय और आशंका से दूर।

नूरी कुछ कहती कि एक लड़की ने आकर चंदन से कहा– आपको अंदर बुलाया है।

और चंदन भागता सा अंदर चला गया।

रसकपूर पलंग पर लेटी सूनी निगाहों से छत को देख रही थी।

चंदन ने धीरे से कहा– कभी–कभी छ्त को टकटकी लगाकर देखते रहने से छत छाती पर आ गिरती है।

रसकपूर ने उठते हुए कहा– मै क्या करूँ, चंदन ! मुझे बचालो, चंदन !

–तो भाग चलो मेरे साथ। रसकपूर, ज़माना बड़ा ज़ालिम है। ये तुम्हें मुझसे ज़बर्दस्ती छीन लेगा और किसी अंधी खाई में फैक देगा।

–ऐसा क्यों सोचते हो ?

–ये ज़माने का दस्तूर है, रसकपूर !

–क्या तुम ज़माने का दस्तूर नहीं बदल सकते ?

–प्यार करने वाले मर तो सकते हैं लेकिन ज़माने का दस्तूर नहीं बदल सकते ।

–मैं क्या करूँ, चंदन ! मैं क्या करूँ ? लगता है, मेरे मन का जलता कपूर मेरे तन के रस को जला डालेगा ।

–ऐसा न कहो । मत कहो ऐसा, रसकपूर !

–मैं सच कह रही हूँ । फिर न रस रहेगा, न कपूर । तुम्हारी रसकपूर बिना जलाये जल जायेगी । बिना दफ़नाये मर जायेगी । वह किसी बेज़ुबान दीवार की तरह एक खामोश शहादत बनकर रह जायेगी ।

–कैसी बातें कर रही हो, रसकपूर ! दीवार देख सकती है, सुन सकती है लेकिन बोल नहीं सकती ।

–मुझे लगता है, मेरी बोली भी कभी डूब जाएगी ।

–इसीलिए कहता हूँ, रसकपूर ! कहीं भाग चलो । मैं और तुम अपने तरीक़े से ज़िन्दगी जीलेंगे ।

–कोई जीने देगा, तब ना !

–क्यों ? कोई क्या कर लेगा ?

–अपनी ज़िन्दगी, अपने तरीक़े से आदमी कहाँ जी पाता है ?

–मैं समझा नहीं ।

–अब मैं तुम्हें क्या समझाऊँ ? मैंने कभी कुछ नहीं चाहा, चंदन ! ये धन–दौलत, ये ऐशो–इशरत मुझे कुछ नहीं चाहिए । मैं इन्हें कभी चाहती भी नहीं थी । मेरे सपने बहुत कोमल थे, बहुत भोले जिनमें मैं थी और तुम थे । पहाड़ियाँ थीं, पेड़ थे, नदी थी, पंछी थे, एक छोटा सा घौंसलेनुमा घर था, आज़ाद हवा थी, केसर में घुली सुबह थी और हिना में

नहाई शाम थी। आँखों में चाँद था और आँगन में चाँदनी। इतना कहते-कहते रसकपूर की आँखें नहा गई। चंदन की ख़ुशबू, गीली हो, गालों तक आ गई।

अभी वो अपनी धड़कनों को सम्हालती कि गली में एक शोर सा बरपा हो उठा। गाजे-बाजे की आवाज़ों से आसमान चहकने लगा।

चंदन बोला--यह--क्या है, रसकपूर ?

-शायद मेरी बारात आ गई है।

-तुम.........तुम्हारी.....बा.....रा.....त ? क्या-क्या मज़ाक कर रही हो ? चंदन हड़बड़ाहट मे बाहर निकला तो किसी से टकरा गया। कंधे पर किसी का हाथ देख वो चौंक पड़ा।

-सुनो, बरख़ुरदार ! मैं राजनर्तकी पारो हूँ और रसकपूर इस रियासत की रानी। दुबारा कभी ऐसी ज़ुर्रत की तो वह तुम्हारी साँसों पर बहुत भारी पड़ेगी। चुपचाप चले जाओ, समझे।

और बिना कुछ समझे चंदन वहाँ से चला गया।

नूरी बेगम का कोठा काँच महल बन गया था। शाही लवाज़मा, घुड़ सवार, बेशकीमती पोशाकें, हीरे-जवाहरात और मखमली पालकी, उसके दरवाज़े पर जन्नत उतर आई थी। भीड़ का समुद्र उमड़ आया था। सपने भी क्या बेमानी ज़िन्दगी जीते हैं, सजते हैं तो फ़िज़ाँ महक उठती है और टूटते हैं तो आवाज़ तक नहीं होती।

काँच महल आज एक नया सपना देख रहा था।



पारो रसकपूर को सजाने–सँवारने में जुटी हुई थी। नूरी चाहते हुए भी उसका हाथ नहीं बटा पा रही थी। आज पहली बार चाँद को चाँदनी के इत्र से नहलाया गया था। सोने से तन पर केसर लगाया गया था। घटाओं में अगर का सावन महकाया गया था। गुलाबों पर गुलाब वारे गये थे। आग को अलता लगाया गया था। फूलों के जिस्म तराश कर फूल को सजाया गया था। सुर्ख़ जोड़े में सजी दहकते अंगार जैसी रसकपूर जब आईने के सामने आई तो वह चूर–चूर हो गया। कहाँ थी उस बेज़ुबान आईने में इतनी ताब कि वो मुजस्सम हुस्न का अक़्स उतार पाता।

पारो खिलखिलाकर हँस पड़ी। नूरी चौंक उठी और रसकपूर, सबकुछ भूले, ठगी सी खड़ी रही। पारो ने उसके गालों पर चिकौटी काटते हुए कहा– महाराज इस दर्पण से ज़्यादा पारदर्शी थोड़े ही हैं। आज उनकी ख़ैर नहीं, बन्नो ! वो तो पूरे के पूरे टूट कर तुम्हारे क़दमों पर बिखर जायेंगे !

रसकपूर ने न कुछ सुना और न कुछ समझा। उसे तो आईने के हर टुकड़े में चंदन दिखाई पड़ रहा था जो कहीं तो उसकी बेवफ़ाई पर हँस रहा था, कहीं उसकी हालत देख उदास था तो कहीं उसकी जुदाई की घड़ी देख मुरझाया सा था। दोनों कमलों पर शबनम उभर आई जिसे अपनी अँगुली पर उतार लिया रसकपूर ने।

रसकपूर की तन–गंध हवाओं में बस गई। दिशाओं के घुँघुरू बज उठे। बाजों की धुन तेज़ होगई। रसकपूर, धीरे–धीरे, सीढ़ियों से उतर पालकी तक आ पहुँची। रूप, सौन्दर्य और श्रंगार का ऐसा अपूर्व संगम ! पालकी के कहारों की पलकें झपकना भूल गईं।

दूर खड़ा चंदन फटी आँखों से यह सब देख रहा था।

रसकपूर की निगाहें उससे मिलीं तो वह अपने को रोक नहीं पाया। वह भागता हुआ उसके पास तक आ पहुँचा।

रसकपूर डोली में बैठ गई। उसका एक पाँव अन्दर था और एक बाहर। वह अपलक चंदन को देखे जा रही थी और चंदन इधर-उधर देख अपने इर्द-गिर्द शब्दों को टटोल रहा था।

उस प्राणान्तक मौन को रसकपूर ने ही तोड़ा। वह बोली- मैं जा रही हूँ, चंदन!

चंदन चुप रहा। रसकपूर धुँआ-धुँआ हो उठी। धीरे से बोली- चंदन! क्या बोलोगे नहीं?

चंदन की ज़ुबान खुलती न देख, उसकी खुली आँखें बोल पड़ीं। महावर लगे गुलाबी पाँव पर आग जैसा गर्म आँसू रसकपूर के तन-मन को जला गया। वो धीरे से बोली- तुम रो रहे हो? रोना तो मुझे चाहिए था। डोली में, मैं जा रही हूँ जहाँ से अर्थी पर ही निकलूँगी।

इस बार चंदन ने रसकपूर के ओठों पर अपनी अँगुली रख दी।

रसकपूर उसके हाथों को अपने हाथो में लेती हुई बोली- चंदन, मैं पराजित नारी की तरह जारही हूँ लेकिन चंदन, तुम देखना, एक दिन मैं दिखाऊँगी कि यदि औरत अपने मन मे ठान ले तो वह क्या कुछ नहीं कर सकती। सारी कायनात उसके क़दमो में लोटती नज़र आए। चंदन! सपनों की मज़ार पर तामीर की गई इमारत बहुत मज़बूत होती है। तुम इंतज़ार करना उस दिन का। उस दिन अपनी रसकपूर पर नाज़ करने का मन होगा तुम्हारा।

अब तक पारो पालकी के पास तक आ पहुँची थी। उसकी निगाहो की आग चंदन को झुलसा गई। उसने कहा... डोली उठाने को कहा और पलक झपकते घ... आका... गई।

जौहरी बाज़ार से आमेर के महलों तक का यह सफ़र ऐसा ही था जैसे आसमान के एक किनारे से दूसरे छोर तक चाँद की यात्रा। पालकी पर जड़े सलमा-सितारों की झिलमिलाहट ऐसी ही लगती थी जैसे वे सितारे अपने चाँद के अंगरक्षक बने चल रहे हों।

कोई शौहरत जब किसी दामन को अचानक छूलेती है तो हज़ार-हज़ार अजनबी, पलक झपकते, उसके निगहबान बन जाते हैं।

अचानक पालकी रुकी तो रसकपूर की तंद्रा टूटी। पता नहीं, इस बीच, वह कितने ही आसमानों की ऊँचाइयों को छूआई थी। उसे सामने खड़ा महल बहुत बौना सा लगा। तभी पारो ने आकर पालकी के पर्दे हटा दिये और महावरी पाँव की छुअन से धरती धड़क उठी।



महल के द्वार तक रसकपूर उड़ती हुई सी जा पहुँची। यह औरत ही है जो एक साथ कितने ही रूप जी लेती है। आदमी, सम्बन्धी क्या, सच्चा दोस्त तक नहीं बन पाता। औरत अजनबी से भी ऐसी डोर बाँध लेती है जो साँस के टूटने पर भी नहीं टूटती।

रसकपूर देहरी पर रुकी। उसकी आरती उतारी गई। उसके दाँये-बाँये पानी छिड़का गया। वार-फेर कर उसकी नज़र का सदक़ा उतारा गया। तभी उसके कानों में खिलखिलाती लेकिन डसती सी आवाज़ पड़ी- यहाँ की एक रात अप्सराओं के इन्द्रलोक से भी ज़्यादा हसीन होती है और सुबह भट्टी की आग से भी ज़्यादा झुलसाने वाली। सुबह की हवा से जिस्म पर जो फफोले पड़ते हैं वो वक़्त के मरहम से भी ठीक नहीं होते

हवाओ के हाथ थाम चलने की कोशिश न करना। यहाँ की हवा जब आँधी बनती है तो पूरा का पूरा जिस्म हवा हो जाता है और उसके हिस्से तक नहीं मिलते।

रसकपूर के पाँव जैसे बर्फ़ हो गये। उसने वहाँ से पीछे मुड़कर भागना चाहा लेकिन क़दम उसका साथ छोड़ बैठे। किसी ने सहारा दिया और वह देहरी लाँघ गई। उस देहरी के अन्दर सब कुछ नया-नया सा था। उसे फर्श सरकता सा लगा। दीवारें हँसती सी लगीं और छत नीचे की ओर आती सी। उसके गले से उभरी चीख कंठ मे ही दबकर रह गई।

नीमहोशी में चलती-चलती वह अपने महल तक आ पहुँची। आज वो महल उसी के नाम था। दासियाँ बाहर से ही वापस मुड गई। अब रसकपूर ने सहमी-सहमी आँखों से उस महल को देखा। वहाँ हीरों के चिराग़ जल रहे थे और नीलमणियो की दीपशिखाएं। दीवारों पर रचे मोर बोलते से जान पड़ते थे। पलग पर बेशुमार मुसकराते फूल, आँखे खोले, उसके आने की बाट जोह रहे थे। रसकपूर धीरे-धीरे चलती हुई पलंग के नज़दीक पहुँच गई। ऐसे सजीव, कोमल, खिले हुए फूल को देखकर सेज पर बिछे फूलो के गाल शर्म से लाल हो गये। उनकी आँखे मुँद गईं।

रसकपूर महल की खूबसूरती को अपनी निगाहो से पीने लगी। उसे लगा जो आदमी पत्थरो मे भी जान डालने का शौक़ीन हो वो किसी जानदार के साथ बदसलूकी कैसे कर सकता है। देहरी पर सुनी बाते उसके मन से मिटने लगी। आदमी जब अपने सपनो को यथार्थ की भूमि पर चलते हुए देखने की कल्पना करता है तो उसे हर मौसम सुहाना लगने लगता है। तब जेठ की दोपहरी भी चाँदनी मे नहाई सी लगती है।

रसकपूर ने अपने जाते हुए होश को अपने दोनो हाथो से पकड़ने की कोशिश की तो उसकी हथेलियाँ बज उठीं और उसी



जौहरी बाज़ार से आमेर के महलों तक का यह सफ़र ऐसा ही था जैसे आसमान के एक किनारे से दूसरे छोर तक चाँद की यात्रा । पालकी पर जड़े सलमा–सितारों की झिलमिलाहट ऐसी ही लगती थी जैसे वे सितारे अपने चाँद के अंगरक्षक बने चल रहे हों ।

कोई शौहरत जब किसी दामन को अचानक छूलेती है तो हज़ार–हज़ार अजनबी, पलक झपकते, उसके निगहबान बन जाते हैं ।

अचानक पालकी रुकी तो रसकपूर की तंद्रा टूटी । पता नहीं, इस बीच, वह कितने ही आसमानों की ऊँचाइयों को छूआई थी । उसे सामने खड़ा महल बहुत बौना सा लगा । तभी पारो ने आकर पालकी के पर्दे हटा दिये और महावरी पाँव की छुअन से धरती धड़क उठी ।



महल के द्वार तक रसकपूर उड़ती हुई सी जा पहुँची । यह औरत ही है जो एक साथ कितने ही रूप जी लेती है । आदमी, सम्बन्धी क्या, सच्चा दोस्त तक नहीं बन पाता । औरत अजनबी से भी ऐसी डोर बाँध लेती है जो साँस के टूटने पर भी नहीं टूटती ।

रसकपूर देहरी पर रुकी । उसकी आरती उतारी गई । उसके दाँये–बाँये पानी छिड़का गया । वार–फेर कर उसकी नज़र का सदका उतारा गया । तभी उसके कानों में खिलखिलाती लेकिन डसती सी आवाज़ पड़ी– यहाँ की एक रात अप्सराओं के इन्द्रलोक से भी ज़्यादा हसीन होती है और सुबह भट्टी की आग से भी ज़्यादा झुलसाने वाली । सुबह की हवा से जिस्म पर जो फफोले पड़ते हैं वो वक़्त के मरहम से भी ठीक नहीं होते ।

हवाओं के हाथ थाम चलने की कोशिश न करना। यहाँ की हवा जब आँधी बनती है तो पूरा का पूरा जिस्म हवा हो जाता है और उसके हिस्से तक नहीं मिलते।

रसकपूर के पाँव जैसे बर्फ़ हो गये। उसने वहाँ से पीछे मुड़कर भागना चाहा लेकिन क़दम उसका साथ छोड़ बैठे। किसी ने सहारा दिया और वह देहरी लाँघ गई। उस देहरी के अन्दर सब कुछ नया–नया सा था। उसे फर्श सरकता सा लगा। दीवारें हँसती सी लगीं और छत नीचे की ओर आती सी। उसके गले से उभरी चीख कंठ में ही दबकर रह गई।

नीमहोशी में चलती–चलती वह अपने महल तक आ पहुँची। आज वो महल उसी के नाम था। दासियाँ बाहर से ही वापस मुड़ गईं। अब रसकपूर ने सहमी–सहमी आँखों से उस महल को देखा। वहाँ हीरों के चिराग़ जल रहे थे और नीलमणियों की दीपशिखाएं। दीवारों पर रचे मोर बोलते से जान पड़ते थे। पलंग पर बेशुमार मुसकराते फूल, आँखें खोले, उसके आने की बाट जोह रहे थे। रसकपूर धीरे–धीरे चलती हुई पलंग के नज़दीक पहुँच गई। ऐसे सजीव, कोमल, खिले हुए फूल को देखकर सेज पर बिछे फूलों के गाल शर्म से लाल हो गये। उनकी आँखें मुँद गईं।

रसकपूर महल की खूबसूरती को अपनी निगाहों से पीने लगी। उसे लगा जो आदमी पत्थरों में भी जान डालने का शौक़ीन हो वो किसी जानदार के साथ बदसलूकी कैसे कर सकता है। देहरी पर सुनी बातें उसके मन से मिटने लगीं। आदमी जब अपने सपनों को यथार्थ की भूमि पर चलते हुए देखने की कल्पना करता है तो उसे हर मौसम सुहाना लगने लगता है। तब जेठ की दोपहरी भी चाँदनी में नहाई सी लगती है।

रसकपूर ने अपने जाते हुए होश को अपने दोनों हाथों से पकड़ने की कोशिश की तो उसकी हथेलियाँ बज उठीं और उसी

क्षण एक सुन्दरी ने द्वार पर आकर अपना सिर झुका दिया।

रसकपूर को अकेलेपन से जैसे अनायास ही राहत मिल गई। वह धीरे से बोली– अन्दर आजाओ।

–जी ! वह दासी महल के भीतर सरक आई।

–क्या नाम है तुम्हारा ?

–केसर।

–जैसा रंग, वैसा नाम। बहुत अच्छा नाम है तुम्हारा।

इस बार उस दासी ने नज़र उठाकर रसकपूर को देखा।

–यहाँ कब से हो ?

–कोई पाँच साल से।

–कोई से क्या मतलब ?

–ठीक–ठीक याद नहीं।

–कैसे आईं थीं ?

केसर चुप रही। रसकपूर ने उसका मुँह अपने हाथों से ऊपर उठाते हुए कहा– बताओ ना, मैं तो तुम्हारी अपनी बहिन हूँ।

केसर ने झुककर रसकपूर के पाँव छूलिये। आँखों में आये आँसुओं को उसने आँचल से पौंछ डाला।

रसकपूर एक क्षण को मौन, ठगी सी, खड़ी रह गई। कभी–कभी डूबते को, डूबते का सहारा भी, पार लगा देता है। उसने ऊपर से नीचे तक केसर को देखा। फिर बोली– अपना दुख मुझे नहीं कहोगी ?

केसर रुँधे गले से बोली–मालकिन ! आज की रात बहुत शुभ है। आज तो यह अरमानों की रात है। पूरा चाँद आसमान पर है और दूसरा इस महल में। आँसुओं की बात तपती दोपहर में ही ठीक रहती है जब गर्म हवा उन्हें अपने आप सुखा देती है।

फिर थोड़ा संयत होकर केसर बोली– फरमायें, आपने कैसे याद किया ?

रसकपूर ने तनिक सम्हलते हुए कहा– यों ही । अकेलेपन से उकता गई थी ।

–अभी से इतनी बेकली ! केसर की आँखें शरारती हो उठीं ।

रसकपूर शरमा गई ।

केसर बोली– मालकिन ! महाराज दिल के बहुत अच्छे हैं लेकिन महल की दीवारें बड़ी जल्लाद हैं । यहाँ की हर दीवार चुग़ल खोर है । मेरी ओर से इस रात के लिए बहुत–बहुत बधाई ।

–इस रात के लिए ? अरे, केसर ! आनेवाली हज़ार–हज़ार रातों के लिए कह । रसकपूर ने दृढ़ता से कहा ।

केसर ने एक बार फिर आँखें उठाकर रसकपूर का चेहरा देखा और धीरे से बोली– परमात्मा करें, ऐसा ही हो ।

–ऐसा ही होगा, केसर ! आज से तू मेरी सहेली हुई । बस, तू मेरे भरोसे को मत तोड़ना ।

–मैं ज़िन्दगी देकर भी आपके विश्वास को क़ायम रक्खूँगी, मालकिन ! अच्छा, अब मैं चलती हूँ । महाराज के आने का वक़्त हो चला है ।

केसर बाहर निकल अँधेरे में समा गई और रसकपूर महल की दीवारें देखने लगी । शायद यह समझने के लिए कि वे जल्लाद और चुग़लख़ोर दीवारें कितनी दुस्साहसी हो सकती हैं ।



रसकपूर उस विशाल महल में स्वयं को बड़ी विचित्र स्थिति में पा रही थी। तबलों की थाप के बीच उसकी आँख खुली थी। सारंगी के सुरों ने उसे बोलना सिखाया था। अपनी माँ के क़दमों में पड़े मुकुट और पगड़ियों को उठाकर उसने चलना सीखा था और घुँघुरुओं की झंकार से मुसकराना। उसकी ज़िन्दगी में क्या था ! लय, सुर, ताल, नाँच, गीत और जिस्म भेदती निगाहें। लोग आते, माँ से बोलते और उसे टटोलते। माँ के हाथों से पान खाते और उसके आजाने पर थैलियाँ खोलते। तब वो कुछ नहीं समझती थी लेकिन आज वो सारे दृष्य उसकी नज़रों के सामने थे और अब वो हर हरक़त का मतलब आसानी से समझ रही थी।

महाराज की ये महरबानी उसपर अचानक ही नहीं हुई थी। महाराज की सौन्दर्य-प्रियता के बारे में उसने भी उड़ते-उड़ते सुन रखा था। वो देवदासी की परम्परा भी जानती थी और रियासतों में पनप रही खेल-रखेल की आदत से भी वह परिचित थी लेकिन रसकपूर सिर्फ़ सेज पर बिछने वाली कली ही नहीं थी।

रसकपूर खड़े-खड़े थक गई तो वह पलंग के एक कोने पर बैठ गई। वह सोचने लगी- क्या चाँद-सूरज के हाथों से बचाया उसका रूप और यौवन, तन का यह अंगराग और मन की उमंग एक बार खुल-बिखरने के लिए ही है ? वह केसर की आँखों में छलकी शबनम को देख समझ गई थी कि एक दिन वह भी उसी की तरह मखमली पालकी में लाई गई होगी। उसकी रेशम देह भी महाराज की बाँहों में उछली-फिसली होगी लेकिन आज--आज वो महाराज के दर्शनों तक को तरस गई है। महाराज की अंकशायिनी रही केसर, अपने परिवार-वृक्ष से टूटी डाली की भाँति कितनी श्रीहीन हो गई है, कितनी निर्जीव

सी लगती है उसकी बातें और कितनी पथराई सी है उसकी आँखे ।

रसकपूर का मन कसैला सा होगया । उसे अचानक चंदन की याद होआई । कितना निर्मल और समर्पित था उसका मन ! उसको तोड़कर वो क्या जोड़ने आगई इन महलों में ? अपने से किये इस सवाल का उत्तर न पाकर रसकपूर का माथा झुक गया । उसकी नसें तन गईं । धड़कनें तेज़ होगईं ।

अपनी धड़कनों पर काबू पा वह खड़ी होगई । उसकी आँखों में एक नई चमक आगई थी । वह स्नानागार में गई । स्नान गृह क्या वह तो दर्पण घर था । चारों ओर दहकते दर्पण और महकते इत्र का सरोवर था वह स्नानगृह । वहाँ से वो गंध-गंध बनी लौटी । माहौल का असर तभी कारगर होता है जब वह महफिल को अपने साँचे में ढाल ले । रसकपूर अपनी कम्पन, निर्बलता और आशंका को स्नानगृह में छोड़ आई थी । अब वही भुवनमोहिनी मुस्कान उसके ओठों पर बैठी हुई थी जिसे छूने के लिए सिंहासन सदैव धराशायी होते रहे हैं ।

रसकपूर का मन, बाहर निकल, चाँद को देखने का हुआ । बिम्ब और प्रतिबिम्ब सामने होते कि इससे पहले ही क़दमों की नशीली आहट सुन रसकपूर सचेत होगई ।



महाराज द्वार पर आ ठिठक गये । रसकपूर मोतीजड़ी ओढ़नी में मुँह छिपाये, अपने घुटनों पर सिर टिकाये पलंग पर बैठी हुई थी । गंध का सागर हिलोरें मार रहा था । महाराज को अपनी पहली सुहागरात याद होआई । उन्होंने अपना हीरे-पन्ना जड़ा हार उतारा और रसकपूर की ओर उछाल दिया । हार रसकपूर के सिर से टकराकर सेज पर बिछ गया । रसकपूर को

लगा किसी ने उसपर दहकता हुआ कोयला फैंक दिया हो। तिरस्कार से दिया गया पुरस्कार भी विष के समान ही होता है।

महाराज एक-दो क्षण रुके रसकपूर की प्रतिक्रिया देखने किन्तु जब बहुत देर तक कोई क्रिया नहीं हुई तो उनके नेत्र आश्चर्य से फैलते चले गये। उनकी आँखों का रतनारापन श्वेत होता चला गया। उनके लड़खड़ाते पाँव अपने आप सम्हल गये। यह उनकी ज़िन्दगी का पहला अनुभव था जब किसी ने उठकर उनका स्वागत नहीं किया हो या उनके उपहार को अपने सिर से न लगाया हो।

महाराज बोझिल मन, भारी क़दमों से, एक कौतूहल लिये आगे बढ़ने लगे। रसकपूर अपना सर्वस्व हारने से पहले सब कुछ जीतना चाहती थी। कामना और संकल्प जब-जब भी आमने-सामने हुए हैं, विजय संकल्प की ही हुई है। आज भी कामना और संकल्प आमने-सामने हुआ चाहते थे।

महाराज पलंग तक पहुँच गये। वे थोड़ा ठिठके और झिझके भी। रसकपूर के आँचल से छन निकलने वाली चन्द्रकिरण अब उनके चेहरे पर पड़ने लगी थी। उन्होंने काँपते हाथों से रसकपूर का झुका हुआ सिर ऊपर उठाया और धीरे-धीरे चाँद को ढापने वाली बदली को हटा दिया। महाराज की आँखें चौंधिया गईं। ऐसा अम्लान और निश्कलंक रूप! महाराज ठगे से खड़े रह गये। वे अपलक देखने लगे। रसकपूर का माथा चाँद सा चमक रहा था। नाक पर झूलती हीरों की नथ सितारों सी लग रही थी। कपोलों पर गुलाब खिल रहे थे और ओठों से शराब झर रही थी। चिबुक जैसे क्षीण जलधार वाली नहर हो। समूची सृष्टि महाराज की दृष्टि में थी। आसमान था, मयखाना था, उद्यान था, नहर थी। सब कुछ एक साथ, एक जुट। महाराज ने काँपते स्वर में कहा- रानी! अपनी आँखें तो खोलो। हमें पूरी तरह तबाह हो लेने दो।

रसकपूर ने धीरे से अपनी पलकें उठाकर महाराज के मुँह

पर जो अपनी अँगुली रखी तो महाराज बेसुध से रसकपूर की गोद में गिर पड़े। सशक्त प्रहरी जैसी घनी भौहे, चँवर ढुलातीं जैसी पलकें और चाँदनी के सागर मे तैरती कश्तियों जैसी पुतलियाँ– महाराज स्वयं उस सागर मे डूबने– उतराने लगे। रसकपूर ने महाराज के सिर के नीचे मखमली तकिया लगा दिया और महाराज का फैंका हुआ हार उनके हाथों मे थमा दिया। महाराज ने एकबार वो हार देखा और फिर रसकपूर की रसभरी गर्दन। महाराज झटके से उठ खड़े हुए। रसकपूर के झुके चेहरे को फिर अपने हाथों से उठाते हुए बोले– ये हार–– ये हार वास्तव में इस गर्दन की शोभा नहीं बन सकता। पत्थरो के इस बेजान हार की क्या बिसात और क्या औकात !

शायद यही क्षण था जिसकी रसकपूर को प्रतीक्षा थी। वह धीरे से बोली– मेरे सरताज ! मैं तो ज़िन्दगी भर अपने गले में आपकी बाहो का हार पहने रहना चाहती हूँ।

महाराज ने रसकपूर को अपने सीने से लगा लिया। बहुत देर तक वह महल धड़कनों और तेज़ साँसों के शोर से हिलता–डुलता रहा। महाराज ने टूटे–टूटे स्वर में कहा– रसकपूर ! तुम्हारे आगे मै अपनी ज़िन्दगी हार गया। आज से ये तुम्हारी हुई। और रसकपूर ने पहली बार अपने जलते ओठ महाराज के गालो पर रख दिये। गुलाब और आग के इस मिलन से हवाओं में इत्र बिखर गया।

रसकपूर धीरे से उठी और मदिरा पात्र उठा लाई। शराब के हाथों में शराब देख महाराज की आँखे अनपिये ही लाल हो गईं।



महाराज आमेर के महलो मे रात बिताकर, सुबह–सुबह ही चन्द्रमहल वापिस लौट आया करते थे लेकिन जब बहुत

सूरज चढ़े भी महाराज नहीं लौटे तो महल में चिन्ता होना स्वाभाविक ही था। पता लगाने के लिए एक दूत आमेर भेजा गया। दूत ने वापिस आकर जो सूचना दी, वह चौंकाने वाली थी। दूत ने बताया कि महाराज उसी महल में किसी नई बाईजी के साथ हैं। नई बाईजी के साथ इतने सूरज चढ़े महाराज का होना एक अनहोनी बात थी। महाराज तो सवेरे धुँधलके में ही लौट आने के आदी थे। सबके चेहरों पर अजीब सी उलझन चिपक गई थी। सपाट चलती ज़िन्दगी राह में पड़े किसी समस्या के पत्थर को देख, बचते-बचते भी, ठोकर खा ही जाती है। चन्द्रमहल में आज सभी ठोकर खाये से लग रहे थे। यह समाचार रनिवास तक में पहुँच गया था। महाराज की रानियाँ और पटरानी भी कितनी ही आशंकाओं से घिर उठीं थीं। जिन्हें एक-दूसरे से मिलने में जलन होती थी, आज सामूहिक जलन में जलती हुईं, एक-दूसरे को मरहम लगाने की चेष्टा कर रहीं थीं। पाँव, पाँव से तो ईर्ष्या कर सकता है लेकिन फफोले कभी फफोलों से डाह नहीं रखते।

दरबार के भी बहुत से काम निबटाने थे इसलिए रियासत के प्रधानमंत्री अपने कुछ दरबारियों के साथ ख़ुद आमेर के लिए रवाना होगये।

महाराज रसकपूर के साथ वाणी-विलास में रत थे। वे रसकपूर की बात पर बार-बार हँस पड़ते। महाराज बोले- कैसा अद्भुत संगम है, रसकपूर ! तुम में। ओठों से शराब झरती है और बातों से शहद टपकता है।

और रसकपूर ने लजाते हुए कहा- तभी आपके गाल मुझे चिपचिपाये से लग रहे हैं। लगता है, आप मेरी बात सुन नहीं रहे, चुपड़ रहे हैं।

महाराज एक बार फिर खिलखिलाकर हँस पड़े। तभी केसर ने द्वार पर खड़े होकर अन्दर आने की इज़ाजत माँगी।

रसकपूर ने वहीं से कहा- तुम्हें पता है कि अन्नदाता

आराम फ़रमा रहे हैं फिर इस बदत्तमीज़ी का कारण ?

–माफ़ी चाहती हूँ, सरकार ! बड़े दीवान साहब अन्नदाता के दर्शन करना चाहते हैं।

–उनसे कहदो, आज अन्नदाता किसी से नहीं मिलेंगे। रसकपूर ने नीची निगाहों से महाराज की ओर देखते हुए कहा जो उसकी लट को अपनी अँगुलियों में उलझा रहे थे।

–जी सरकार !

–सुनो। महाराज का भारी स्वर सुनकर केसर और रसकपूर दोनों ही चौंक पड़ीं।

–जी, अन्नदाता !

–रानी साहिबा को सरकार नहीं रानीजी कहते हैं। समझे।

–भूल की माफ़ी चाहती हूँ, अन्नदाता !

–ठीक है। अब जाओ और जैसा रानीजी ने फ़रमाया है, करो।

रसकपूर निहाल होगई। वह महाराज के गले लगकर सिसक उठी। महाराज ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा – ये बेशक़ीमती मोती इस तरह नहीं लुटाते और हम तुम्हारी आँखों में आँसू देख भी नहीं सकते।

महाराज ने अपनी अँगुलियों से उसके आँसू पोंछते हुए कहा– हाँ, हमें एक बात याद आगई। तुम्हें सुनाएँ ?

रसकपूर ने सम्हलते हुए कहा– सुनाइये, हुज़ूर !

तुम्हारे बारे में हमारी राज नर्तकी ने कहा था कि तुम सौन्दर्य–सागर का नायाब मोती हो। तब हमें यक़ीन नहीं हुआ लेकिन आज सोचते हैं, उसकी निगाह कितनी पारखी थी।

–मैं तो हुज़ूर के क़दमों की ख़ाक हूँ।

–और हमने उसे अपने माथे पर बिठा रक्खा है गोया

हमारा सिर, सिर न हुआ ख़ाकगाह हो गया।

–कैसी बातें कर रहे हैं, हुज़ूर। आप मेरे सरताज हैं। आपका सिर बेशकीमती रत्नों से जड़े मुकुट से जगमगाता रहे और आपके सामने दुनिया के तमाम सिर ख़म रहें। मेरी तो यही आरज़ू है।

रसकपूर ने अपने हाथों से, सोने का वर्क़ लगा, बीड़ा खिलाते हुए कहा– अपनी सारी परेशानियाँ मेरी झोली में डाल दें, अन्नदाता ! उनकी तपिश मैं आप तक नहीं पहुँचने दूँगी।

महाराज ने पलंग पर लेटते हुए रसकपूर के ओठों की ओर देखते हुए कहा– ऐसा ही होगा, मेरी रानी ! यह सारा राज–काज तुम्हें सौंपकर मैं तो यह शराब पीने में ही अपनी ज़िन्दगी गुज़ार देना चाहता हूँ।

और रसकपूर महाराज के ओठों पर झुक गई।



रात के अँधेरे में एक काली छाया, चौकन्नी सी, इधर–उधर देखती हुई, चलते–चलते, एक दरवाज़े पर आकर रुक गई। उसने धीरे से कुंडी खटखटाई। दुबारा बजाई। कोई उत्तर न मिलने पर वो साया धीरे से बोला– केसर ! दरवाज़ा खोलो।

अन्दर से आवाज़ आई– कौन है ?

–बस, तुम्हारी वही आदत। जानते–पहचानते तंग करना। और कौन होगा, मेरे सिवा !

बात ख़त्म होते–होते दरवाज़ा खुल गया। केसर अंदर चली गई और पीछे आनेवाला दरवाज़ा बंद करके अंदर आ गया। एक सामान्य कमरे में मद्धम प्रकाश था। केसर चारपाई पर जाकर बैठ गई। आनेवाला उसके पास जाकर खड़ा होगया।

केसर को घूरते हुए वो बोला– आज ये कैसा वर्ताव कर रही हो ? हमेशा दरवाज़ा खोलकर गले मिलती थीं । दरवाज़ा खुद बंद करती थीं । पलंग से नीचे उठकर बैठ जाती थीं लेकिन आज---

–आज कलवाली केसर नहीं रही । आज वो इस रियासत की पटरानी की निजी सेविका है, उनकी बहिन है, सहेली है ।

–दिमाग़ तो नहीं चल गया ! अगर पटरानीजी ने सुन लिया तो ज़बान खिंचवा लेंगी ।

–और अगर मैंने ज़रा सी ज़ुबान हिलादी तो तेरा सर धड़ से अलग हो जाएगा ।

–केसर, मेरी लाड़ो, आज तूने दारू पीली है क्या ?

–दारु पिये तू और तेरा खानदान ।

–तुझे हो क्या गया है ?

–जैसे तुझे कुछ पता नही ?

–सच कह रहा हूँ, मुझे कुछ पता नहीं ।

–तो बता आजकल महाराज कहाँ हैं ?

–सुना है, कोई नई बाईजी आई है, बहुत ख़ूबसूरत है । महाराज उसी के चक्कर में हैं ।

–ठीक सुना तूने । महाराज ने उन्हें रानी बना लिया है ।

–क्या कह रही है ?

–मैं सच कह रही हूँ । महाराज ने मुझसे कहा कि मैं उन्हें रानी कहा करुँ ।

–महाराज ने तुझसे कहा ?

–जी, गैदालालजी ! और मुझे रानीजी ने अपनी बहिन और सहेली बना लिया है । क्या समझे ?

–समझ गया । चार दिनों की चाँदनी ।

–हाँ, चार दिनों की चाँदनी और फिर गैंदालाल । क्यों, यही समझे ना । लेकिन अब ऐसा नहीं होगा ।

–सो, क्यों ?

–महाराज अपना राज–पाट सब रानीजी को सम्हलाने वाले हैं ।

–क्या बात कर रही है तू, केसर !

–तमीज़ से बात कर, गैंदा !

–अब मैं गैंदा होगया ?

–हो सकता है, कल तू गधा होजाए ।

–और तू ?

–केसर रानी ।

–तेरे भी पर निकलने लगे ।

–पर भी एक मौसम में ही निकलते हैं । और आजकल मेरा पर निकलने का मौसम चल रहा है ।

–वो दिन भूल गई ?

–उस दिन मेरे पर काट दिये गये थे । अब फिर निकलने लगे हैं ।

–मैं बैठ तो जाऊँ ?

–ये बात हुई ना । चल, बैठ जा । तूने मुझे बुरे दिनों में सहारा दिया था, ये बात मैं कैसे भूल सकती हूँ ।

–मेरी अच्छी केसर ! कहते हुए गैंदा जैसे ही उसे गले लगाने के लिए आगे बढ़ने लगा, केसर बोल पड़ी–बस, बस अब गले न पड़ । चुपचाप बैठा रह ।

–ऐसी बेरुख़ी भी ठीक नहीं, केसर !

–इसमें रूखी–चुपड़ी का क्या सवाल ? ये तो अपने–अपने दिन हैं ।

–लेकिन अब तो रात है।

–वो तेरे लिए।

–और तेरे लिए ?

–रानीजी का प्यार है। क्या हैं रानीजी, बिल्कुल चाँदनी के इत्र में भीगे रुई के फाये जैसी। चाँद छूले तो मैली होजाएँ।

–अरे, तू तो कविता करने लगी।

–वो तो खुद कविता है। कल कहने लगीं– केसर, तू क्या मिली, मेरी तो तक़दीर खुल गई। और ये सोने की जौमाला मुझे दे दी।

–अच्छा, तो जौमाला के चक्कर में रानीजी के गुण गाये जा रहे है।

–तेरे चक्कर में भी मैने तेरे गुण गाये थे।

–केसर ! तू मेरी हालत जानती ही है। हूँ तो दरबार का हलकारा ही। तूने मुझे प्यार दिया, मेरी यही दौलत है। गैदा ने फिर आगे बढ़ना चाहा तो केसर ने पलंग से उठते हुए कहा– उस दौलत को अपने घर रख और आरती उतार।

–आज इतनी जली–कटी क्यों सुना रही है ?

–तू कितने दिनो में आया है ?

–अच्छा, तो यह बात थी।

–और क्या होती ! रानीजी महाराज से बेल की तरह लिपट–लिपट रही है और मै यहाँ प्यार की लपट मे जल रही हूँ। तुझे ख़्याल है मेरा ? इतना कहते–कहते केसर रो पड़ी।

गैदा ने उसे अपने कंधे से लगाते हुए कहा– अब, चुप भी हो जा। आइन्दा ऐसी गलती मैं कभी नहीं करूँगा।

केसर ने अलग होते हुए, अपने आँसू पौछते हुए, पूछा– मोतीचूर के लड्डू लाया ?

—लड्डू ?

—तूने पिछली बार चलते हुए नहीं कहा था।

—हाँ, याद आया। मैं कल ज़रूर ले आऊँगा।

—तो फिर कल ही आना।

—फिर दिमाग़ चल गया।

—अभी तो, तू चलता नज़र आ। मुझे ज़ोरों की नींद आ रही है। मुँह अँधेरे रानीजी की ख़िदमत में जाना है।

—तो सचमुच, मैं चला जाऊँ।

—भाग यहाँ से।

पाँचवे दिन भी जब हलकारा वापिस लौट आया और महाराज के दर्शन नहीं हो सके तो बात ने चर्चा का रूप ले लिया। यह चर्चा महल से निकल बाहर गलियों, मुहल्लों और बाज़ारों में आगई। कोई महाराज की कमज़ोरी कहता तो कोई रसकपूर के चरित्र बखानता तो कोई रसकपूर की खूबसूरती के किस्से कहता। आज हर आदमी की ज़ुबान पर यही बात थी।

राह चलते एक आदमी ने दूसरे से कहा– रसकपूर को मैंने भी देखा है। वो चीज़ ही ऐसी है, जो देखले दीवाना होजाए। मुझे भी तब तीन रात नींद नहीं आई थी।

खुजलाते हुए पहले आदमी ने कहा।

–हम तो क्या कर सकते है। दिल की लगी कोई दिल्लगी तो होती नहीं। लेकिन राजा को चाहिए कि उस रूप की देवी को अपने सामने रक्खे और राजकाज चलाता रहे।

–कैसी बात करते हो ? पहला आदमी बोला– सामने जलती शम्मा रख दो और परवाने से कहो, वो गली–मुहल्ले की बात करे।

–मै समझा नहीं।

–इसमें समझने की क्या बात है ! हकीकत जब अफ़साना बनती है तो उसके रंग को देख कोई नहीं जान सकता कि उसकी सुर्ख़ियों के लिए कोई दिल कितनी बेरहमी से क़त्ल हुआ होगा।

–ये फ़लसफ़ा मेरी समझ से बाहर है।

–अरे, सीधी सी बात है। महाराज किसी की मौहब्बत में मुब्तिला होगये तो कौनसा उन्होंने गुनाह कर दिया। ये हंगामा किसलिए ?

–ये हंगामा इसलिए कि महाराज राज–काज से हाथ खींच बैठे है। आम लोगों के रोज़मर्रा के काम रुक गये हैं। इससे रियासत के दुश्मन भी सक्रिय हो सकते हैं।

तीसरे आदमी ने ठिठकते हुए कहा– हाँ, ये तुम ठीक कह रहे हो। टोंक के पिंढारी को अगर ख़बर लग गई तो हम सबकी ख़ैर नहीं।

पहले ने पूछा– ये पिंढारी क्या बला है ?

तीसरा बोला– टोंक का नवाब अमीर ख़ाँ। उसे जब मौक़ा मिलता है, इधर–उधर, लूट–पाट कर वापिस टोंक भाग जाता है।

दूसरे ने आसमान की ओर देखते हुए कहा– मालिक सब ठीक करेगा।

दरबारी रोज़ इकट्ठे होते। एक–दूसरे को देखते। आँखों में बात करते और चले जाते। लेकिन आज दरबार में हलचल थी। दरबार के वयोवृद्ध सभासद की त्यौरियाँ आज चढ़ी हुई थीं। वे आज अपने आसन पर बैठे तक नहीं थे। उन्हें देख रियासत के प्रधानमंत्री मेघसिंह भी खड़े होगये।

मेघसिंह को खड़ा देख वे बोले– ये सब तुम्हारी कमज़ोरी का नतीजा है। मैं जब महाराज के पूज्य पिता का दीवान था तो क्या मजाल महाराज इस तरह मनमानी कर लेते।

–मैं क्या करूँ, बोहराजी ! महाराज के दर्शन हों तब तो उनसे अर्ज़ करूँ। मेघसिंह ने धरती की ओर देखते हुए कहा।

–ये जयपुर रियासत का प्रधानमंत्री बोल रहा है ? बोहराजी ने दहाड़ते हुए पूछा। फिर थोड़ा रुककर बोले– आमेर जाओ। उस बाईजी से मिलकर, उसे साफ़–साफ़ बता दो कि हद उलाँघने का नतीजा क्या हो सकता है। समझे।

–जी। मैं अभी चला जाता हूँ। इतना कह मेघसिंह दरबार से बाहर चले गये। शेष दरबारी भी उनके पीछे–पीछे चले गये। सिर्फ़ बोहराजी वहाँ खड़े ख़ाली सिंहासन को देखते रह गये। कभी–कभी सूनापन भी बहुत बोलता है। शायद वही सुन रहे थे।

मेघसिंह के आने की ख़बर लेकर जब केसर महलों में गई उस समय महाराज और रसकपूर चौसर खेल रहे थे।

रसकपूर बोली– मालिक ! लगता है, इस बार आप हार जायेंगे।

–इस बार क्या, रानी ! तुमसे तो हम हर बार हारेंगे। ज़िन्दगी हार जाने के बाद भला खेल में कैसे जीतेंगे ?

और रसकपूर फिर महाराज के गले लग गई।

तभी केसर ने द्वार से कहा– रानीजी, बेअदबी की माफ़ी चाहती हूँ। वड़े दीवानजी आपके दर्शन करना चाहते हैं।

–क्या––क्या कहा ? रसकपूर ने हकलाते हुए पूछा।

–जी ! उन्होने मुझसे यही कहा है।

रसकपूर ने महाराज की ओर देखा।

महाराज ने मुसकराते हुए कहा– लगता है, उन्हें यह समझ आगई है कि हमने राज–काज सब तुम्हारे सुपुर्द करने का फ़ैसला कर लिया है। इसलिए शायद तुम्हें नज़राना पेश करना चाहते हो। तुम्हे उनसे वैसे मिलना तो पड़ेगा ही राज चलाने के लिए, फिर आज ही मिललो।

रसकपूर ज़ोर से बोली– केसर ! उन्हे मेहमानखाने में बिठाओ। हम अभी आते है।

थोड़ी देर में तैयार होकर, केसर के साथ, जब रसकपूर मेहमानखाने मे पहुँची तो उसने देखा कि चार–पॉच दरबारी वहॉ पर बैठे है। केसर ने एक की ओर संकेत करते हुए, धीरे से, कहा –रानीजी, बड़े दीवान जी !

रसकपूर ने उस ओर देखा तो मेघसिह ने खड़े होकर रसकपूर को ऊपर से नीचे देखा। जब उसे वो दुबारा देखने लगे तो रसकपूर बोली– फरमाइये, दीवान जी ! कैसे तकलीफ़ की ?

–बाईजी ! वो हम––

मेघसिंह आगे बोलते कि रसकपूर तमक कर बोली– दीवान जी ! रियासत की रानी से बात करने तक का सलीका आपको नहीं आता। पहले अदब सीख कर आइये। जाइये, तशरीफ़ लेजाइये।

मेघसिह इस अप्रत्याशित घटना के लिए तैयार नही थे। उन्हें असल में इस हक़ीकत का पता भी नहीं था। वे इस हद तक सोच भी नहीं पाये थे कि महाराज इतने गहरे तक किसी नर्तकी को चाह सकते हैं कि वो रियासत के प्रधानमंत्री तक का

मुँह तोड़ दे । अबला कब बला बन जाये, कौन कह सकता है । नारी के मन और मिजाज़ के बारे में की जाने वाली कोई भविष्यवाणी कभी सच नहीं हो सकती ।

मेघसिंह अटकते हुए से बोले– गुस्ताख़ी के लिए माफ़ करें । मैं दरअसल महाराज के दर्शन करना चाहता था । रियासत के सारे काम ठप्प हो गये हैं । बहुत से मामलों में महाराज के हुक्म लेने हैं ।

मेघसिंह के बदले सुर देखकर रसकपूर मन ही मन मुसकरा उठी । ऊपर से गंभीर बने रहते हुए वो बोली– ठीक है, आप कल तशरीफ़ ले आएँ । महाराज के दर्शन आपको हो जाएँगे । अब आप जा सकते हैं ।

मेघसिंह और अन्य दरबारी चुपचाप चले गये । लेकिन चलते वक़्त उन्होंने कोई दुआ–सलाम नहीं की । यह बात रसकपूर को अखरी ज़रूर लेकिन उसने अपने चेहरे पर कोई भाव नहीं आने दिया । वापिस मुड़ते हुए रसकपूर ने केसर के कंधे पर हाथ रखते हुए सवाली नज़रों से देखा । केसर ने आँखें झुकाते हुए कहा– अब आपका इस रियासत पर राज पक्का, रानीजी !

–और तेरा, मेरे इस दिल पर । कहते हुए रसकपूर हँस पड़ी ।

रसकपूर जब महल में पहुँची तो उसने देखा, महाराज उसकी ओढ़नी का एक टूटा मोती हाथ में लिये बैठे थे ।

रसकपूर ने विस्मयपूर्व [illegible] क्या [illegible] सरताज !

–तुम्हारी ओढ़नी का [illegible] दास,
कितना अनमना ।

[illegible] नहीं, अन्न [illegible]

[illegible] से [illegible]

[illegible] हम

हाल [illegible]

रसकपूर ने महाराज के ओठों पर अँगुली रखते हुए कहा– ऐसी अशुभ, असंभव बात आप सोचते ही क्यों हैं।

–मेरी रानी ! तुम महलों के षड़यंत्र को नहीं जानतीं। हमें पता है ! ये महल कब, किसके साथ क्या सलूक कर बैठें, कोई नहीं जानता।

–कैसी हारी–हारी बातें कर रहे है, हुजूर ! महल हैं तो आपके ही, फिर भला कैसा षड़यंत्र ? रसकपूर ने भविष्य में झाँकने की कोशिश करते हुए पूछा।

महाराज ने गहरी साँस लेते हुए कहा– महल तो हमारे हैं लेकिन उनमे रहने वाले हमारे नहीं। खैर, छोड़ो इन सब बातों को। जब वक्त आयेगा, तब देखा जाएगा।

कुछ रुककर महाराज बोले– हाँ, वो मेघसिंह से क्या बात हुई ?

–वे दरअसल आपसे मिलना चाहते थे। कुछ जरुरी कागज़ों पर आपका हुक्म लेने वे कल आयेंगे।

–कल क्यों ? बहुत दिनों से राज–काज किया भी नहीं है। उन्हे अभी बुलालो। अरे, कोई है ?

–जी, अन्नदाता ! बाहर से केसर की आवाज़ आई।

महाराज की बात काटते हुए रसकपूर बोली– अभी तो वे चले गये, हुजूर ! कल सुबह आयेंगे वे।

–अरे, मेघसिंह रानीजी को बाकायदा आदाब तो पेश करके गये है ना ? महाराज ने जोर से बोलते हुए पूछा।

केसर सहसा कुछ नहीं बोल पाई। उसे यह पता नहीं था कि रानीजी ने महाराज को क्या कहा होगा।

–अरे, तुम ज़िन्दा हो या मर गईं ? महाराज ने चीखते हुए पूछा।

रसकपूर ने महाराज का हाथ अपने हाथो में लेते हुए



कहा– छोड़िये, हुज़ूर ! बहुत छोटी सी बात है । मुझे किसी के सलाम की ज़रूरत नहीं और मैं किसी से मिलना भी नहीं चाहती ।

–फिर तुम राज–काज क्या सम्हालोगी ? तुम्हें तो सबके सलाम और नज़राने कबूल करने ही पड़ेंगे । जनता और दरबारियों से मिलना पड़ेगा । लोगों को बख्शीश देनी होगी । सज़ा सुनानी पड़ेगी । महाराज ने रसकपूर को अपने पास बिठाते हुए कहा– इसलिए, दरबारियों को तुम्हारे सामने झुकने की आदत शुरू से ही डलवादी जाए, यही मुनासिब है ।

रसकपूर ने मौक़ा देख धीरे से कहा– जैसी हुज़ूर की मर्ज़ी । मैं तो आपके हाथों की कठपुतली हूँ, जैसे नचायेंगे, नाचूँगी । लेकिन एक बात ज़रूर चाहती हूँ ।

रसकपूर के मुँह को अपनी ओर घुमाते हुए महाराज ने पूछा– बोलो, बोलो क्या चाहती हो ? मैं तुम्हें अपनी जान तक देसकता हूँ ।

–ऐसी बातें अगर आप करेंगे तो मैं नहीं बोलूँगी ।

–अच्छा, अब ऐसी बात नहीं करेंगे । बोलो, तुम्हें क्या चाहिए ?

–आपके प्यार के बाद मुझे कुछ नहीं चाहिए, मेरे ! महाराज के गले लगते हुए रसकपूर ने धीरे से कहा– मैं तो सिर्फ़ इतना चाहती हूँ कि आपके प्रधानमंत्री मुझे बाईजी कहकर न पुकारें ।

–क्या कहा ? बाईजी ? सुनते ही महाराज पलंग से उठ खड़े हुए । चौकी पर रखी अपनी तलवार उठाते हुए उन्होंने कहा– हम उसे ज़िन्दा नहीं छोड़ेंगे । हम उसे जान से मार डालेंगे । जयपुर रियासत की रानी को बाईजी कहकर मेघसिंह ने अपने महाराज के गालों पर तमाचा मारा है । तुमने सुनकर उसे ज़िन्दा जाने दिया लेकिन हम उसे नहीं छोड़ेंगे । हम अभी

जयपुर जाते है।

रसकपूर के मन में उम्मीदो के हज़ार–हज़ार चिराग़ एक साथ जल उठे। उसने महाराज के पाँव पकड़ते हुए कहा–जान की अमान मिले तो अर्ज़ करूँ।

–उठो। रानी! तुम्हारी जगह वहाँ नहीं है। रसकपूर को कंधो से पकड़ उठाते हुए महाराज ने कहा।

–मेरी तो जन्नत है इन क़दमों में। मैं तो यह अर्ज़ कर रही थी कि जब आप सारा राज–काज मेरे ऊपर ही छोड़ने वाले है तो अपनी बेइज़्ज़ती का बदला भी मुझे ही लेने दे। आपका यह क्रोध सारी रियासत को मेरे ख़िलाफ़ कर देगा। राव–राजे नाराज़ हो जाएँगे। गुस्ताख़ी माफ़ हो, यह राज चलाने का तरीक़ा नही है, मेरे मालिक।

रसकपूर की बात सुन महाराज के माथे की सलवटें सुलझ गईं। अपनी तलवार उसे पकड़ाते हुए महाराज बोले–ठीक है। जैसा तुम चाहो, करो। हम तो तुम्हारी बेइज़्ज़ती से तैश मे आगये थे। लेकिन अब हमे यकीन होगया है, तुम्हें ऊपरवाले ने जैसा बेपनाह हुस्न दिया है, वैसा ही बेमिसाल दिमाग़ भी दिया है। आदमी तो नहीं लेकिन क़ुदरत सोने मे सुगन्ध ज़रुर पैदा कर सकती है।

और रसकपूर ने तलवार वापिस चौकी पर रखदी।



केसर फूलों की बाल्टी लिये जारही थी कि दबे पाँव गैंदालाल ने पीछे से आकर उसकी आँखे मूँदली। हड़बड़ाहट में केसर के हाथों से फूलो की बाल्टी गिर गई और उसी घबराहट मे गैंदालाल ने उसकी आँखें छोडदी।

गैंदालाल को देख अपनी चीख दबाते हुए, गुर्राती सी,

साक्षी रहना तु...

केसर बोली– मैं सच कहती हूँ, अब तेरी ज़िन्दगी के गिने–चुने दिन ही बाक़ी हैं।

–क्या मतलब ?

–बस, रानीजी के हाथों में हुकूमत आई और मैंने, हाथी के पाँव तले, तुझे कुचलवाया।

–हाथी की जगह अगर वो हथिनी हुई तो ?

केसर थोड़ा शरमाते हुए बोली– मारूँगी। नहीं तो भाग जा। इतना कहकर केसर बिखरे हुए फूलों को बीनने लगी।

गैंदालाल ने पूछा– केसर ! रात को फूलों का क्या होगा ?

केसर ने हाथ नँचाते हुए कहा– अरे, नासपीटे ! इतना भी नहीं जानता। फूलों का जो कुछ भी होता है, वह रात को ही होता है। रात को ही ये महकते हैं। सेज पर बिछते हैं। और रात को ही जूड़े में सजते हैं। रात को ये गालों पर खिलते हैं और ओठों से बिखरते हैं।

–मैं सब समझ गया, मेरी रानी ! लगता है, आजकल नई रानीजी से तेरी ख़ूब पट रही है।

–ये मेरी रानी किसको कह रहा है, निगोड़े !

–ये नये–नये सम्बोधन कहाँ से सीखकर आई है ? क्या तेरी रानीजी महाराज से ऐसे ही बोलती हैं।

–रानीजी को बीच में मत ला। नहीं तो मैं ही तुझे जान से मार डालूँगी।

–मैंने कौनसी उन्हें गाली दे दी।

–गाली देने की तुझमें हिम्मत है क्या ? बड़े दीवानजी ने उन्हें अनजाने में बाईजी कह दिया तो महाराज ने तलवार निकालली। वो तो रानीजी ने महाराज के पाँव पकड़ लिये,नहीं तो न जाने क्या हो गया होता !

–अच्छा, बाबा ! न मै रानीजी का नाम लूँगा, न उनकी सहेली का। मेरे लिए तो तू भली, तो जग भला।

–अरे, दुमछल्ले ! कहावत भी ग़लत बोलने लगा। आप भला तो जग भला, कह।

–अच्छा, अच्छा, अब मुँह खोल।

–मुँह ! क्यों ?

–खोल तो सही।

केसर ने जैसे ही मुँह खोला, गैदालाल ने अँगरखे में से मोतीचूर का लड्डू निकाल उसके मुँह मे रख दिया।

केसर मुसकरादी। उसने फूलो की वाल्टी उठाई और भाग छूटी। गैदालाल ने थोड़ी तेज़ आवाज़ मे कहा– रात को आऊँगा।

केसर ने पीछे पलट, उसे देखकर, मुसकराते हुए कहा– आजाना।



वैसे ऐसा नहीं था कि महाराज के आमेर रहने पर उन्हे जयपुर की सूचनाएँ न मिलती हो। उनके ख़बरनवीस हर दिन की सारी घटनाओ की पूरी जानकारी उन्हे देते रहते थे। महाराज रसकपूर के सामने ही उन ख़बरों को सुनते। ख़बरनवीस ने वोहराजी का गुस्सा, महारानी भटियाणी की रानियो से मंत्रणा, मेघसिंह का लौटकर महाराज का ज़ुल्फो में क़ैद होने का समाचार देना और दूनी ठाकुर चाँदसिंह के तेवर की बात तफसील से महाराज को सुनादी थी।

आज शाम से ही महाराज पीने लगे थे। वे कभी रसकपूर को अपनी गोद मे लिटाते, कभी पास विठाते तो कभी खुद

उसकी गोद में लेट जाते। रसकपूर को लगा कि महाराज आज चिन्ता में हैं। वह महाराज के ओठों से प्याला लगाती हुई बोली– अन्नदाता की आँखों में, आज, रसकपूर की जगह बैचेनी कैसे आकर बैठ गई ?

–नहीं रानी, हमें बैचेनी नहीं। हमें बोहराजी और दूनी ठाकुर की चिन्ता है। ये दोनों आदमी हमारे वश में नहीं हैं। बोहराजी हमारे पिता के प्रधानमंत्री थे और ठाकुर सच्चे राजपूत। वे आन पर मर मिटने वालों में से हैं। ख़बरनवीस ने उन दोनों का जिस ढँग से ज़िक्र किया, वह चिन्ताजनक है।

–कैसी बातें कर रहे हैं, हुज़ूर ! आपके तेवर देख पाने की ताब सूरज तक में नहीं है फिर भला आपके दरबारियों की क्या बिसात ? आप निश्चिन्त रहें। मैं जो हूँ आपके साथ।

कमज़ोर आदमी की दिलासा भी, एक क्षण के लिए, क़िसी भी आदमी को बलवान बना डालती है। महाराज रसकपूर की बात सुन कुछ निश्चिन्त से हो गये।

रसकपूर के हाथ से एक घूँट पीकर महाराज बोले– रानी, छोड़ो इन बेकार की बातों को। जयपुर चलने पर तो तुम्हें वैसे ही फ़ुर्सत कम मिलेगीं। दरबार के काम बढ़ जाएँगे इसलिए आज तुम्हारा नृत्य हो जाए।

–नृत्य ? आपका हुक्म सिर–माथे पर लेकिन अचानक आज यह ख़्याल कैसे आ गया, मेरे मालिक !

–हमें हमारे किसी दरबारी––वो, वो––मिश्रजी ने कहा था कि तुम बहुत ख़ूबसूरत नृत्यांगना और गायिका हो। और भी किसी ने तुम्हारी तारीफ़ की थी लेकिन हम आज तक तुम्हारा वो फ़न नहीं देख पाये। तुम्हारे हुस्न से आगे हम झाँक ही नहीं पाये।

–मैं अभी इंतज़ाम करती हूँ, मेरे सरताज !

–इंतज़ाम ?

–साजिन्दे और नाँचने में साथ देने के लिए कुछ लड़कियाँ तो बुलानी ही पड़ेगी।

–जैसी तुम्हारी मर्जी। महाराज ने अनमने भाव से कह दिया।

रसकपूर को लगा, शायद महाराज का मन उससे कुछ उचटने लगा है। शायद उन्हें अपने दरबारियों की पीड़ा सालने लगी है। वो जानती थी– निन्दा के लिए वृहद शब्द भण्डार होता है किन्तु प्रशंसा के लिए शब्द खोजने पड़ते हैं। उसे पता था, सत्य को भी सहज रूप से स्वीकारने के लिए साहस की जरुरत होती है जबकि असत्य तुरन्त मन में समा जाता है।

महाराज की मनोदशा कुछ ऐसी ही थी। उनके लिए, दरबारियों के आक्रोश का सामना करने की अपेक्षा एक [illegible] को छोड़ना अधिक सरल था। लेकिन रसकपूर उस मिट्टी की बनी थी जिसने हारना तो सीखा ही नहीं था।

रसकपूर महाराज को जाम पर जाम पिलाती रही। जब महफ़िल सज गई तो रसकपूर ने अपना श्रृंगार किया। केसर उसके अंग–अंग को अनंग बनाने में जुटी हुई थी। रसकपूर ने कहा था– केसर, आज तुम्हारी रानी की अंतिम लड़ाई है। अगर महाराज के दिलो–दिमाग़ पर छा गई तो रियासत उसकी होगी। और केसर तो अपने मन–प्राण से रसकपूर को समर्पित थी। उसने रसकपूर को फूलों की राजकुमारी बना दिया। [illegible] में फूल, हाथों में फूल, कानों में फूल, जूड़े में फूल। रसकपूर स्वयं एक खिला हुआ फूल बन गई।

रसकपूर ने नाँचना शुरू किया। उसके लिए [illegible] उसका आखिरी नाँच था। नूपुर थिरकने लगे। [illegible] लहकने लगे। स्वर उभरने लगे। और [illegible] लगे। रसकपूर [illegible] झूमकर नाँच रही थी, [illegible] थी। [illegible] में, [illegible] में [illegible] और [illegible] था।

महाराज [illegible] नेत्रों से उसे देख रहे थे। [illegible]

[illegible]

रसकपूर आज उन्हें परायी सी और नई सी लग रही थी। उन्हें लगा, उनके समाने घटा और बिजली साक्षात् होकर नृत्य कर रही हों। महाराज पर ख़ुमारी छाने लगी। वे ज़ोर से चिल्लाये– मेरी रानी! मैं मर जाऊँगा। मर जाऊँगा मैं। मुझ पर रहम करो। मेरे आगोश में आजाओ।

नाँच थम गया लेकिन महाराज पूरी तरह लुट गये। उनके तन, मन, प्राण न्यौछावर हो गये रसकपूर पर। वे बेसुध से रसकपूर के चरणों पर गिर पड़े और रसकपूर ने अपने घुँघुरू उतार कर फैंक दिये।

सूरज की पहली किरण ने जब रूप, यौवन और मद के संगम में डूबे उस महल पर दस्तक दी तो रसकपूर की अलसाई आँखें अपने आप खुल गईं। उसने लेटे-लेटे ही अपने इधर-उधर देखा। वह अभी तक महाराज की बाँह पर थी। उसके चेहरे पर विजय की एक हलकी सी मुसकान बिखर गई। उसने थोड़ा उठकर महाराज की ओर देखा। उसे नींद में गाफ़िल महाराज का भोला चेहरा उस बच्चे सा लगा जो आसमान के चाँद को पकड़ने की ज़िद में रोया हो और चाँद के हाथ में आजाने पर तसल्ली से सो गया हो।

जब केसर ने मेघसिंह के आने की ख़बर दी, उस वक़्त महाराज रसकपूर की गोद में लेटे हुए थे और रसकपूर उनका सिर दबा रही थी। बहुत रात तक जागते रहने के कारण उनका सिर कुछ भारी हो चला था। रात की ख़ुमारी ने भी अभी पूरी तरह से उनकी पलकों का दामन छोड़ा नहीं था। महाराज ने रसकपूर की ओर देखते हुए कहा– रानी! उससे तुम ही मिल लो। हम क्या करेंगे? तुम्हें जो फ़ैसला करना हो, उसे लिखा देना। हम दस्तख़त कर देंगे।

रसकपूर ने महाराज के बालों में अँगुलियाँ फिराते हुए कहा– मेरे सरताज! आपको एक सप्ताह हो चला है, राजकाज किये। राजकाज की ओर से इतनी बेरुख़ी ठीक नहीं। लोग

नाजायज़ फ़ायदा उठा सकते है। शक्ति होते हुए समय पर उसका प्रयोग न करने से व्यक्ति सार्वजनिक दृष्टि में क्षीण हो जाता है।

–अच्छा, रानी ! सुबह–सुबह से ही पाठशाला शुरू कर दी। मेघसिंह को यहीं बुलालो।

रसकपूर मुसकरा दी। केसर आदेश लेकर चली गई। महाराज और रसकपूर थोड़ा व्यवस्थित होकर बैठ गये। कुछ सर्वविदित तथ्य छिपाने में ही सुख देते हैं।

मेघसिंह ने धड़कते दिल-से 'अन्नदाता की जय हो' कहते हुए जब प्रवेश किया तो महाराज ने मुसकराते हुए कहा– आइये, मेघसिंहजी ! पधारिये।

मेघसिंह ने फिर झुककर महाराज को प्रणाम किया तो महाराज रसकपूर की ओर देखते हुए बोले– रानी ! अपने प्रधानमंत्री का आदाब कबूल करो।

महाराज की बात सुन रसकपूर और मेघसिंह दोनों ही चौंक पड़े। फिर तुरन्त सम्हलते हुए मेघसिंह ने रसकपूर की ओर भी झुकते हुए कहा– रानी साहिबा ! मुजरा कबूल करें।

–तशरीफ रखिये, दीवानजी ! धीरे से कहकर रसकपूर वहाँ से उठकर अंदर चली गई। सीमा से अधिक प्रसन्नता भी आँखें सम्हाल नहीं पातीं। रसकपूर की आँखें भर आईं थीं। आज महाराज ने सार्वजनिक रूप से उसे प्रतिष्ठापित कर दिया था। रियासत का प्रधानमंत्री उसके सामने झुक गया था।

रसकपूर अपने को संयत करने की चेष्टा कर ही रही थी कि महाराज ने पुकारा– रानीजी ! आप कहाँ चली गईं ?

और रसकपूर महाराज के सामने हाज़िर हो गई।

–रानी ! मेघसिंह कुछ कागज़ों पर हुक्म लेना चाहते हैं। उन अर्ज़ियो को सुनलो और फ़ैसला लिखवादो। महाराज ने रसकपूर को अपने पास बिठाते हुए कहा।

मेघसिंह अर्जियाँ सुनाते गये और रसकपूर फ़ैसले लिखवाती गई। रसकपूर के फ़ैसले सुनते–सुनते महाराज की आँखों में चमक उभरती गई और मेघसिंह की आँखों में विस्मय फैलता गया। रसकपूर ने सारे फ़ैसले वही लिखवाये जो अर्ज़ियाँ सुनते–सुनते महाराज के मन में उभरे थे। मेघसिंह को भी एक नर्तकी से इतने सधे हुए फ़ैसले पाने की उम्मीद नहीं थी। किसी–किसी घटना पर कभी–कभी विस्मय को भी विस्मित हो जाना पड़ता है।

अंत में, मेघसिंह ने कहा– अन्नदाता ! दूनी ठिकाने के असली वारिस वाला किस्सा भी बहुत दिनों से आपके फ़ैसले के इंतज़ार में है।

–मेघसिंह ! उस प्रकरण को दरबार में पेश करें। दोनों पक्षों की बहस सुनकर रसकपूर उसका फ़ैसला करेंगी। थोड़ा रुककर महाराज फिर बोले– और हाँ, रानी और हम कल चन्द्रमहल आयेंगे। सारे इंतज़ाम आप ख़ुद देखलें। महाराज ने उठते हुए कहा।

मेघसिंह ने महाराज और रानी को झुककर आदाब पेश किया और बिना पीठ मोड़े, उल्टे पाँव चलते, महल से बाहर निकल गये।



गैंदालाल ने झुकते हुए कहा– रानी साहिबा ! आदाब कबूल फ़रमायें।

केसर, हड़बड़ा कर, बोली–क्या––क्या रानी साहिबा तशरीफ़ लारही हैं ?

गैंदालाल ने मुसकराते हुए कहा– हमारी तो रानी साहिबा आप ही हैं।

–धत् तेरी की। मैं तो घबरा ही गई थी।

–क्यों, इसमें घबराने की क्या बात थी ?

–बात कैसे नहीं थी। अगर रानी साहिबा तुझे मेरे साथ देख लेतीं तो ?

–तो क्या हो जाता ?

–मैं तो कहीं की न रहती।

–अब तुम कहाँ की हो ?

–छोड़ो, इन बेकार की बातो को।

–तो किसको पकड़ूँ।

–मारूँगी।

–तो, मारो ना !

–तू बहुत ख़राब है, गैंदा !

–तू बहुत अच्छी है, केसर !

और केसर भागकर गैंदालाल के गले लग गई। थोड़ी देर बाद अलग होते हुए बोली– ये अपना किस्सा कब तक चलेगा ?

–इस जनम तक और फिर अगले जनम में। इतना कह गैंदालाल ने फिर केसर को गले लगा दिया।

केसर बोली– मैं क्या करूँ, गैदालाल ! कुछ समझ में नहीं आता। इस तरह छुप–छुप कर मिलना कभी–कभी बहुत अखरता है। क्या हम दोनो आज़ादी से दिन भर साथ नहीं रह सकते ?

गैंदालाल ने लम्बी साँस लेते हुए कहा– केसर, तू जानती है, जनानी ड्योढ़ी में कितनी शम्माएँ है जो एकबार जलीं और ज़िन्दगी भर के लिए बुझ गईं। महाराज की बाहो में एक रात रहकर वे कहीं की नहीं रहीं। महाराज के नाम का सिंदूर माँग मे डालते–डालते उनकी अँगुलियों के पोर घिस गये लेकिन महाराज के दुबारा दर्शन उन्हे नसीब नहीं हुए।

–सच है, गैंदा ! उनके लिए उनका रूप ही दुश्मन होगया। कभी–कभी रूप, रूपवान को ही जला डालता है।

–तू तो तब भी उनसे बहुत–बहुत अच्छी है कि तुझे रानी साहिबा ने अपने पास रख लिया। वहाँ तो पता ही नहीं लगता कब सूरज उगा, कब चाँद ढ़ला। और वहाँ का वह ज़ालिम मुख़्त्यार......

–कौन ? वो बीच वाला ? केसर ने बात काटते हुए पूछा।

–हाँ, वो ही। अगर आदमी होता तो उन अभागिन औरतों को तो सम्हालता और अगर औरत होता तो उनके दुख–दर्द समझ पाता। लेकिन वह तो दरिन्दा है, दरिन्दा। सारी औरतें उससे सहमी–सहमी रहती हैं।

–मैंने भी देखा था उसे एक बार, जब मैं रातभर वहाँ रही थी। वो मर्दुआ आकर बोला था– बाईजी, हड्डियाँ दर्द कर रही हों तो दबा दूँ। और फिर भयानक हँसी हँसता हुआ चला गया था।

फिर थोड़ा रुककर केसर बोली– ये किस्से तो होलिए, अब तू बता, कैसे आया ?

–मोतीचूर के लड्डू खिलाने।

–मुझे नहीं खाने।

–क्यों ?

–उनका दाम चुकाना बड़ा महँगा पड़ता है।

–तो चली जा उसी जनानी ड्योढ़ी में। वहाँ सब कुछ सस्ता ही सस्ता है।

अचानक कुछ याद करती सी केसर बोली– हाँ, गैंदा ! मैं तुझे बताना ही भूल गई। कल महाराज और रानी साहिबा चन्द्रमहल जा रहे हैं।

–मैंने सब कुछ सुन लिया है। सारे जयपुर में अफरा-तफरी मची हुई है। दरबारी टुकड़ों-टुकड़ों में मिल रहे हैं। राव, राजे, ठाकुर अलग-अलग दौड़-भाग कर रहे हैं। सारी रानियाँ मिलकर भटियाणी पटरानी के चरण दबा रही हैं और दूनी ठाकुर अलग आग-बबूला हुए घूम रहे हैं।

–जब एक रानी से बीसियों हो गईं तब तो किसी ने कुछ नहीं कहा। अब उनके पाँवो में बिवाई क्यों फट रही है ?

–तू भी बड़ी भोली है। आदमी को अपना दुख इतना नहीं कचोटता जितना दूसरे का सुख चुभता है।

–क्या मतलब ?

तुम्हारी रानी के साथ महाराज को रहते सात दिन हो चले। वो एक क्षण के लिए भी बाहर नहीं निकले जबकि किसी रानी के साथ ऐसा नहीं हुआ।

–इसमे मेरी रानीजी का क्या दोष है ?

–दोष उनके रूप का है, उनके आकर्षण का है, उनकी सम्मोहन-शक्ति का है।

–और दूनी ठाकुर को क्या हुआ ?

–दीवानजी ने उन्हें बता दिया है कि उनका फ़ैसला तुम्हारी रानी करेंगी।

–फिर क्या होगा, गैंदा !

–आसार तो बुरे ही नज़र आ रहे हैं। नई रानी के लिए किसी के दिल में कोई गुंजाइश नहीं है।

–आख़िर क्यों ?

–इसलिए कि महाराज ने एक अज्ञात जाति से नई रानी लाने की पहल की है।

–गैंदा ! क्या प्यार की भी कोई जाति होती है ? क्या मन भी ब्राह्मण, राजपूत या मुसलमान होता है ? क्या आँखें जब आँखों को पढ़ती हैं तो पहले जाति पूछती हैं ?

–ये ठीक है, केसर ! तू, जो होना चाहिए, वह कह रही है लेकिन जो चाहिए वो होता कहाँ है ?

–क्या हम वास्तविकता से मुँह मोड़ लें ?

–वास्तविकता से आँख मिलाता ही कौन है ? आदमी जब, जैसा अवसर देखता है अपने चेहरे पर वैसा ही चेहरा लगा लेता है।

–मैं, गैंदा ! सच कहती हूँ, मेरी रानीजी इतनी नेक, इतनी दयालु और महाराज को इतनी समर्पित हैं कि बस कुछ न पूछ।

–सो तो ठीक है, केसर ! लेकिन स्वार्थ के आड़े आने पर सम्बन्ध तक स्वाह हो जाते हैं। और तेरी रानी का तो किसी से कोई सम्बन्ध भी नहीं। वो ठहरी नाँचने–गाने वालीं।

–तो क्या नाँचने–गाने वाली औरत नहीं होती ?

–औरत तो होती है लेकिन उस पर सबकी नज़रें होती हैं। घर के दीपक को चौराहे पर उजाला करने के लिए नहीं रखा जाता और चौराहे की रोशनी घर नहीं लाई जाती चाहे घर में कितना ही अँधेरा क्यों न हो।

–ये तो कोई बात नहीं हुई। मेरी रानीजी का क्या कुसूर है जो वो चौराहे पर पड़ी पाई गईं। वो ख़ुद तो चौराहे पर गईं नहीं थीं।

–आदमी की इज़्ज़त इतिहास से नहीं उसके वर्तमान से होती है। और अपनी रानी का वर्तमान तो तू जानती ही है ।

–मैं तो तुझे बड़ा हलका हलकारा समझती थी, गैंदा ! लेकिन तू तो बड़ा पंडित है, रे। लेकिन ये तो बता, अब होगा क्या ?

–मैं क्या बताऊँ तुझे ! जो होगा, सब ठीक ही होगा।

अचानक आशंका का अँधेरा घिर जाने पर सूरज की रोशनी में भी आदमी टकरा जाता है। यही हाल गैंदा और केसर

का हुआ। थोड़ी देर के लिए वहाँ सन्नाटा छा गया।

गैंदा ने केसर के कंधों को हिलाते हुए पूछा– अपनी रानी के चक्कर में मेरी रानी कहाँ खोगई ?

–यों ही, रानी जी के बारे में सोचने लगी थी।

केसर का मुँह अपने हाथ से ऊपर उठाकर उसकी आँखों में झाँकते हुए गैंदा ने कहा– तो मैं अब जाऊँ ?

केसर ने उसका हाथ झटकते हुए कहा– अब, जब आ ही गया है तो नखरे क्यों कर रहा है ?

और दोनो खिलखिलाकर हँस पड़े।



खबरनवीस से सारी खबरें सुनकर भी महाराज अपने फ़ैसले पर दृढ़ रहे। रसकपूर ने कहा भी– अन्नदाता ! जब दरबारी और रनिवास मेरे चन्द्रमहल में आने का विरोध कर रहे हैं तो मैं वहाँ जाकर क्या करूँगी ? मेरे लिए तो यह महल ही स्वर्ग से बढ़कर है। मेरे तो चाँद आप हैं, और जहाँ आप हैं वही चन्द्रमहल है।

–यह तो ठीक है, रानी ! लेकिन हम हमेशा तो यहाँ रह नहीं सकते।

–ये मैंने कब कहा ? आप जयपुर जायें। राजकाज निबटायें और रात को यहाँ आजाएँ।

–ये बात हमें जम नहीं रही। महाराज टहलते-टहलते, कुछ सोचते हुए बोल रहे थे। रसकपूर उनके पीछे–पीछे चलती हुई अपनी बात कह रही थी।

हारकर रसकपूर ने कहा– फिर जैसा अन्नदाता चाहें।

महाराज ने रुककर रसकपूर का हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा– यही ठीक है, रानी कि तुम हमारे साथ चन्द्रमहल चलो। हमें अपने महल में किसे रखना है इसका फ़ैसला दरबारी नहीं, हम करेंगे और हम फ़ैसला कर चुके हैं।

रसकपूर ने महाराज़ के सामने अपना सिर झुका दिया। सच है, होनी अपने साधन स्वयं जुटाती है।

महाराज जब रसकपूर के साथ चन्द्रमहल पहुँचे तबतक साँझ घिरने लगी थी। महाराज के अनेक दरबारी, महल के दास–दासी, प्रतिहारी महाराज के स्वागत के लिए कतार में खड़े थे। आज महाराज एक सप्ताह बाद चन्द्रमहल में पधारे थे। दोनों ओर से फूलों की वर्षा हो रही थी। धरती पर लाल पाँवड़े बिछे हुए थे जिस पर पाँव धरती हुई रसकपूर, धीरे–धीरे, महाराज के साथ बढ़ रही थी। पीछे प्रधानमंत्री और प्रमुख दरबारी हाथ बाँधे, नज़रें झुकाये चल रहे थे। महाराज की जय से महल गूँज रहा था लेकिन नई रानी के प्रति किसी में उत्साह नहीं था। केसर और गैंदा दूर खड़े आँखों–आँखों में बात कर रहे थे। रानियाँ महारानी के साथ यह दृष्य छिपे–छिपे देख रही थीं। रसकपूर को देखकर एक बार तो वे सब भी परास्त हुई सी प्रतीत होने लगीं थीं। ईर्ष्या कितनी भी प्रबल हो गुण का घूँघट देख एक बार तो निगाह झुका ही लेती है। रसकपूर को देखकर उनकी निगाहें झुकीं तो महारानी ने फुंकारते हुए कहा– इसी नागिन के फन कुचलने हैं। और सभी रानियाँ फिर जोश में आगईं।

महाराज के अपने महल में प्रवेश करने से पहले सब दरबारी मुजरा करके रुख़सत होगये तब महाराज ने महलपाल को बुलाकर कहा– क्या इंतज़ाम है तुम्हारा ? तुम्हें मेघसिंहजी ने कुछ नहीं कहा ? नई रानी आई हैं। सारे महल को जगमगादो। ग़रीबों को ख़ैरात बाँटो। और हाँ, पारो आज राग–रंग की महफ़िल में हमारी नई रानी भी हमारे साथ होंगी।

पारो महाराज का संकेत समझ सिर झुका कर चली गई।



आनन-फानन में सारी व्यवस्थाऐ हो गईं। चन्द्रमहल दुलहिन सा सज उठा। रंग-विरंगी रोशनी से जगमगा उठा सारा महल। वेमौसम आई उस दिवाली को सारा शहर फटी आँखों से देख रहा था। रसकपूर के चन्द्रमहल मे आने की ख़बर आग की तरह चारों ओर फैल चुकी थी। लोग बरवस ही महल की रोशनी देखने को इकट्ठे हो गये। रात का पहला पहर बीतते-बीतते महल के बाहर मेला लग गया। जितने मुँह, उतनी बात होने लगीं।

किसी ने कहा- क्या किस्मत पाई है बाईजी ने।

कोई बोला- राजा-महाराजो का मन फिरते देर नहीं लगती।

तीसरा बोला- लम्बी जिन्दगी में क्या है। आदमी एक दिन जिए लेकिन मन की करके जिए।

पीछे से किसी ने बात को मोड़ देते हुए कहा- रात के बाद दिन तो निकलता ही है। यह रात कौनसी रहने वाली है!

कौने में खड़ा आदमी बोला- औरो के मुक़द्दर से जलने वाले अपनी ही आग मे जल जाते है।

इस पर किसी ने चुटकी ली- बाईजी का सारंगी वाला लगता है।

और वहाँ खड़े लोग बेसाख्ता हँस पड़े।

उधर पारो महफ़िल सजाने में लगी हुई थी। उसने रंगमहल को जीता जागता बग़ीचा बना दिया था। चारों ओर फूल ही फूल, कलियाँ ही कलियाँ। उस माहौल मे जब चाँद और चाँदनी आकर बैठे तो खुशबुओ का सैलाब उमड़ आया।

इधर रसकपूर ने पहला जाम भर कर महाराज को दिया उधर पारो के घुँघुरु गमक उठे। रंगमहल में नये-नये रंग

उभरने और बिखरने लगे। पारो ग़ज़ल गाते हुए नाँच रही थी। आज उसके पांवों में भी बिजली बस गई थी। रसकपूर को रानी के लिबास में देख उसकी आँखों की मणियाँ संगीत में पिघलकर माहौल को मदहोश बना रही थीं। ख़ुशी जब सही न जाए तो दीवारों के नूपुर खनक पड़ते हैं। महाराज कभी अपनी रानी की आँखों से पीरहे थे, कभी ग़ज़ल के मिसरों से और कभी उन नाज़ुक हाथों से। आधी रात बीतते–बीतते महाराज वहीं रसकपूर की गोद में लुढ़क गये।

और महफ़िल समाप्त होगई।



आधी रात हलकी सी दस्तक सुनकर नूरी जान गई कि दरवाज़े पर कौन है। वो धीरे से नीचे गई और दरवाज़ा खोल दिया। मिश्रजी सीढ़ियों पर चढ़ ऊपर आकर गद्दे पर बैठ गये। अपनी पगड़ी एक ओर रखते हुए वे बोले– बेग़म! तुम्हें क्या हो गया है? गुलाब–गुलाब रहने वाला यह कोठा आजकल पतझर का पेड़ कैसे लगने लगा।

नूरी ने बुझी–बुझी आँखों से मिश्रजी को देखते हुए कहा– मालिक! रूह के चले जाने पर कैसा भी जिस्म हो मिट्टी हो जाता है। अब ये कोठा और नूरी दोनों ही मिट्टी हो गये हैं। मैंने आपकी ज़िद पर अपनी ममता कुर्बान करदी। आपने अपने रुतबे और मर्तबे के लिए अपनी लड़की तक का इस्तैमाल कर डाला। उसे आपने मेरी मर्ज़ी के ख़िलाफ़, आख़िरकार अपने महाराज को तश्तरी में सजाकर पेश कर ही दिया। मैं अपनी बेटी की झलक तक पाने के लिए तरस गई हूँ। मैं टूट गई हूँ, मालिक! बिल्कुल टूट गई हूँ।

–कैसी बातें कर रही हो, बेग़म! ईश्वर तुम्हारी उम्र

लम्बी करे जिससे तुम अपनी बेटी का सुख और वैभव देख सको।

–पेड़ से टूटी डाली पर लम्बी उम्र की दुआ का कोई असर नहीं होता, मेरे मालिक!

–तुम्हें कुछ पता तो है नहीं। यों ही अनापशनाप बोले जा रही हो।

–क्या मतलब? मैं समझी नहीं।

–आज रतनपुर चन्द्रमहल में आ गई।

–सच? मिश्रजी को झकझोरते हुए, बड़ी हैरत से पूछा नूरी ने।

–हाँ, बेगम! आज मेरी आँखों की चमक वापिस लौट आई। सात दिन तक खाना और सोना मुहाल हो गया था। आज नई गद्दी को अपनी आँखों से देख लिया तो तसल्ली हो गई। महाराज तो अपनी बेटी के हाथों की कठपुतली बन गये हैं। उनके सपने पंख लगने लग गये, बेगम! और तुम मेरी हाँ-हाँ करते जा रही हो!

–क्या? सच, आप रतनकुंवर को देखकर आये हैं?

–हाँ, बेगम! जब मैंने रानी साहिबा को देखा तो [illegible] है। [illegible] है, [illegible] है, [illegible] है। [illegible] है।

–आप मेरी बेटी के [illegible] हैं, मेरे सरताज!

–बेगम! मुझे तो यह जानना चाहिए कि, [illegible] रियासत की [illegible]।

–मैं [illegible]। [illegible] खुदा कसम, [illegible] [illegible]

है। रसकपूर की याद में आँखों के झरनों को आँचल ने कई बार सोखा है। आज आप आ गये तो जलते जिस्म को जैसे बारिश की पहली फुहार छूगई। इतना कहते-कहते अनचाहे ही नूरी मिश्रजी के बहुत नज़दीक तक चली आई और मिश्रजी ने उसका हाथ पकड़ उसे अपने पास बिठा लिया।

नूरी ने धीरे से पूछा–हुज़ूर, शर्बत तो नोश फ़रमायेंगे ?

मिश्रजी ने उसकी आँखों में झाँकते हुए कहा– बेग़म आज तो ख़ुशी की रात है, बेहद ख़ुशी की रात जो बहुत लम्बे इंतज़ार के बाद आई है। ऐसी रात को सिर्फ़ शर्बत ?

नूरी ने आँख मटकाते हुए कहा– मालिक ! शैतानी की भी एक उम्र होती है।

मिश्रजी ने आँखें झपकाते हुए पूछा– और शैतान की ?

–बातों में तो मैं आपसे जीत नहीं पाऊँगी।

–और हम तो, बेग़म ! आपसे किसी बात में भी आज तक नहीं जीत पाये। आपका हुस्न बेमिसाल, आपका गला बाकमाल, आपके पाँव मुजस्सम जमाल। आपतो हुस्न, सुर और शबाब का ऐसा जलज़ला हैं जिसके सामने कोई भी जानदार इमारत साबित रह ही नहीं सकती।

नूरी ने आदाब पेश करते हुए कहा– मेरे शहंशाह ! क्या साजिन्दों को जगाऊँ ?

–पहले हमें होश में तो आने दें।

–अभी आई। कहकर नूरी अंदर गई। थोड़ी देर में वह बोतल और गिलास रखकर जाने लगी तो मिश्रजी बोले– अब कहाँ, बेग़म !

–सुर की महफ़िल सजाने का इंतज़ाम करने जारही हूँ।

गिलास मुँह से लगाते हुए मिश्रजी बोले– दो मौहब्बत करने वालों के बीच शम्मा का होना भी बदशकुनी होती है। आप, बेग़म ! किन्हें बुलाने जारही हैं इतनी रात ढ़ले।

–मैने समझा शायद, हुजूर कुछ सुनने का दिल रखते हों !

–हम सिर्फ दिल रखते हैं, बेग़म ! और दिल के वहलाने के लिए सिर्फ़ दिल की ही जरुरत होती है।

–अब मैं क्या समझूँ, आप जैसे बड़े लोगों की बात ! मेरी समझ में तो कुछ नहीं आरहा कि मैं क्या करूँ ?

–आप हमारे नज़दीक बैठिये और हमें अपने हाथों से पिलाइये। मरने के लिए ख़ुद सिर झुकादेने वालों पर जल्लाद तक रहमदिल हो जाते है। हम मरने के लिए आपके जल्वागाह में हाज़िर है।

–और कनीज़ भी चिड़ी, ईंट, पान की नहीं, आपके हुकुम की गुलाम है।

नूरी के हाथ से एक घूँट पीते हुए मिश्रजी ने कहा– जानेमन ! आप तो बेग़म हैं, गुलाम तो हम है।

इतना कहते–कहते मिश्रजी ने नूरी को अपने सीने से लगा लिया।



आज आम दरबार होना था। इसकी मुनादी पहले ही की जा चुकी थी। सारे रावराजे, ठिकानेदार, ठाकुर तो इकट्ठे होने वाले थे हीं, जनता के बैठने का भी आज खास इतज़ाम था। आज महाराज के साथ नई रानी रसकपूर भी दरबार मे आनेवाली थीं। वैसे दरबार में आज तक कोई रानी तशरीफ नहीं लाई थी। इस पहले मौक़े को देखने का उत्साह जनता में जहाँ सीमा उलाँघ रहा था, वहाँ रावराजों को, ठाकुरों के आज का दिन डंक सा चुभ रहा था। नई रानी को नज़राना देना होगा। झुककर

है। रसकपूर की याद में आँखों के झरनों को आँचल ने कई बार सोखा है। आज आप आ गये तो जलते जिस्म को जैसे बारिश की पहली फुहार छूगई। इतना कहते-कहते अनचाहे ही नूरी मिश्रजी के बहुत नज़दीक तक चली आई और मिश्रजी ने उसका हाथ पकड़ उसे अपने पास बिठा लिया।

नूरी ने धीरे से पूछा-हुज़ूर, शर्बत तो नोश फ़रमायेंगे ?

मिश्रजी ने उसकी आँखों में झाँकते हुए कहा- बेग़म आज तो ख़ुशी की रात है, बेहद ख़ुशी की रात जो बहुत लम्बे इंतज़ार के बाद आई है। ऐसी रात को सिर्फ़ शर्बत ?

नूरी ने आँख मटकाते हुए कहा- मालिक ! शैतानी की भी एक उम्र होती है।

मिश्रजी ने आँखें झपकाते हुए पूछा- और शैतान की ?

-बातों में तो मैं आपसे जीत नहीं पाऊँगी।

-और हम तो, बेग़म ! आपसे किसी बात में भी आज तक नहीं जीत पाये। आपका हुस्न बेमिसाल, आपका गला बाकमाल, आपके पाँव मुजस्सम जमाल। आपतो हुस्न, सुर और शबाब का ऐसा जलज़ला हैं जिसके सामने कोई भी जानदार इमारत साबित रह ही नहीं सकती।

नूरी ने आदाब पेश करते हुए कहा- मेरे शहंशाह ! क्या साजिन्दों को जगाऊँ ?

-पहले हमें होश में तो आने दें।

-अभी आई। कहकर नूरी अंदर गई। थोड़ी देर में वह बोतल और गिलास रखकर जाने लगी तो मिश्रजी बोले- अब कहाँ, बेग़म !

-सुर की महफ़िल सजाने का इंतज़ाम करने जारही हूँ।

गिलास मुँह से लगाते हुए मिश्रजी बोले- दो मौहब्बत करने वालों के बीच शम्मा का होना भी बदशकुनी होती है। आप, बेग़म ! किन्हें बुलाने जारही हैं इतनी रात ढ़ले।

–मैंने समझा शायद, हुजूर कुछ सुनने का दिल रखते हों !

–हम सिर्फ़ दिल रखते हैं, बेग़म ! और दिल के बहलाने के लिए सिर्फ़ दिल की ही जरूरत होती है।

–अब मै क्या समझूँ, आप जैसे बड़े लोगो की बात ! मेरी समझ में तो कुछ नहीं आरहा कि मैं क्या करूँ ?

–आप हमारे नज़दीक बैठिये और हमें अपने हाथों से पिलाइये। मरने के लिए ख़ुद सिर झुकादेने वालों पर जल्लाद तक रहमदिल हो जाते हैं। हम मरने के लिए आपके जल्वागाह मे हाज़िर है।

–और कनीज भी चिड़ी, ईंट, पान की नहीं, आपके हुकुम की ग़ुलाम है।

नूरी के हाथ से एक घूँट पीते हुए मिश्रजी ने कहा– जानेमन ! आप तो बेग़म हैं, ग़ुलाम तो हम हैं।

इतना कहते–कहते मिश्रजी ने नूरी को अपने सीने से लगा लिया।



आज आम दरबार होना था। इसकी मुनादी पहले ही की जा चुकी थी। सारे रावराजे, ठिकानेदार, ठाकुर तो इकट्ठे होने वाले थे ही, जनता के बैठने का भी आज ख़ास इतज़ाम था। आज महाराज के साथ नई रानी रसकपूर भी दरबार मे आनेवाली थीं। वैसे दरबार मे आज तक कोई रानी तशरीफ नहीं लाई थी। इस पहले मौक़े को देखने का उत्साह जनता मे जहाँ सीमा उलाँघ रहा था, वहाँ रावराजों को, ठाकुरो को आज का दिन डंक सा चुभ रहा था। नई रानी को नज़राना देना होगा। झुककर

सम्मान देना होगा । बड़ी असमंजस की स्थिति थी । अहं पर पड़ी चोट अगर दिमाग़ सम्हाल ले तो ठीक, अगर दिल तक पहुँच जाए तो आदमी पागल होजाता है । आज ऐसी चोट महारानी भटियाणी, पुराने प्रधानमंत्री और दूनी ठाकुर चाँदसिंह सम्हाल नहीं पा रहे थे । बाईजी को दरबार में रानी की तरह कबूल करना उनसे सहन नहीं हो पा रहा था ।

ठीक वक़्त पर दरबारियों का दरबार में आना शुरू होगया था । जनता की भीड़ भी बराबर बढ़ती जारही थी । मेघसिंह के कारिन्दे मुस्तैदी से अपने-अपने काम को अंजाम देरहे थे ।

दरबार जब खचाखच भर गया और सारे दरबारियों ने अपने-अपने स्थान लेलिये तो अचानक प्रतिहारी की भारी आवाज़ ने महाराज के दरबार में पधारने की सूचना दी । सारा दरबार ख़ामोश होगया । सागर में आती लहर के समान सारे दरबारी और जनता अपने-अपने स्थान पर खड़े होगये । महाराज ने प्रवेश किया और चलते-चलते अपने सिंहासन के पास आकर खड़े होगये । आज सिंहासन के करीब एक छोटा सिंहासन और लगा हुआ था । महाराज ने खड़े हुए दरबारियों और जनता पर एक उचटती सी निगाह डालते हुए मेघसिंह से कहा- प्रधानमंत्रीजी ! हमारी रानी रसकपूर को भी सम्मान के साथ दरबार में ले आयें ।

हलचल की हलकी सी एक काँपती लहर पूरे दरबार में उभर आई । महाराज की तेज़ नज़र से यह नहीं छिपा रह सका कि उनके आदेश पर मेघसिंह ने छिपी नज़र से बोहराजी और ठाकुर चाँदसिंह को देखा । एक अनकहे अन्तर्विरोध के साथ वे बाहर गये और थोड़ी ही देर में रसकपूर ने दरबार में प्रवेश किया । वह सीधी, महाराज को देखती हुई, उनके निकट जा पहुँची । महाराज को उसने झुककर प्रणाम् किया । महाराज ने इशारे से उसे अपने पास वाले सिंहासन तक पहुँचने का आदेश दिया । फिर महाराज ने बैठते हुए कहा- आप सब भी तशरीफ़ रखिये । महाराज आज पहली बार इतनी देर तक सिंहासन के

पास खड़े रहे थे। वे जानते थे कि अगर वे बैठ गये तो रसकपूर की अगवानी शायद ये दरबार उस सम्मान से न करे।

महाराज के आदेश पर सारा दरबार बैठ गया। सारी निगाहें रसकपूर पर टिकी हुईं थीं। कभी वो सूरज की प्रचण्ड किरण सी लगती तो कभी चाँद से झरती हुई शीतल चाँदनी सी। कभी वो महाराज के तेज के प्रति आकर्षित सूरजमुखी सी लगती, तो कभी चाँद की मुग्धा कुमुदिनी सी। कभी वो रूप-सरोवर में खिले संगीत-कमल सी लगती तो कभी चाँदनी के साये में फैली मदहोशी की चादर सी। लोग अपनी सुध-बुध खोये, साँस रोके, अपलक उसे निहार रहे थे। वास्तव में ऐसा लग रहा था जैसे सूरज और चाँद दोनों एक साथ, अलग-अलग, सिंहासन पर विराजमान हों।

राव-राजों और ठाकुरों को ऐसा लगा जैसे असीम धनराशि के समक्ष कोई भिखारिन बैठी हो। मखमल के लिबास में किसी गरीब का आँसू टँक गया हो। सूरज को जैसे ग्रहण लग गया हो और चाँद के पास आकर कोई कालरात्रि बैठ गई हो। किसी विषकन्या के हाथ में अनायास जैसे अमृतघट आगया हो। दृष्टि, मन के रथ पर बैठकर, वही देखती है जो मन देखना चाहता है। और अपने-अपने मन की आँखों से लोग रसकपूर को अपने इच्छित रूपों में देख रहे थे। इन सबसे दूर, कोने मे बैठा चंदन अपनी नज़रें ही नहीं उठा पारहा था। रसकपूर को देखने का कौतूहल उसे दरबार तक तो ले आया था, लेकिन अब उसे आँखें उठाने का साहस नहीं हो पारहा था। वह रसकपूर को किसी और की हुई देख पाने की स्थिति में शायद नहीं था।

महाराज का संकेत पाकर मेघसिंह सबसे पहले उठे और उन्होंने आगे बढ़कर रसकपूर को नज़राना पेश किया। इसके बाद तो एक अटूट ताँता सा लग गया। लोग रसकपूर के सामने आते, झुकते और नज़राना पेश करते। रसकपूर गद्‌गद् सी, भावविभोर हुई कभी नज़राने को देखती, कभी पास बैठे

सम्मान देना होगा। बड़ी असमंजस की स्थिति थी। अहं पर पड़ी चोट अगर दिमाग़ सम्हाल ले तो ठीक, अगर दिल तक पहुँच जाए तो आदमी पागल होजाता है। आज ऐसी चोट महारानी भटियाणी, पुराने प्रधानमंत्री और दूनी ठाकुर चाँदसिंह सम्हाल नहीं पा रहे थे। बाईजी को दरबार में रानी की तरह कबूल करना उनसे सहन नहीं हो पा रहा था।

ठीक वक़्त पर दरबारियों का दरबार में आना शुरू होगया था। जनता की भीड़ भी बराबर बढ़ती जारही थी। मेघसिंह के कारिन्दे मुस्तैदी से अपने-अपने काम को अंजाम देरहे थे।

दरबार जब खचाखच भर गया और सारे दरबारियों ने अपने-अपने स्थान लेलिये तो अचानक प्रतिहारी की भारी आवाज़ ने महाराज के दरबार में पधारने की सूचना दी। सारा दरबार ख़ामोश होगया। सागर में आती लहर के समान सारे दरबारी और जनता अपने-अपने स्थान पर खड़े होगये। महाराज ने प्रवेश किया और चलते-चलते अपने सिंहासन के पास आकर खड़े होगये। आज सिंहासन के करीब एक छोटा सिंहासन और लगा हुआ था। महाराज ने खड़े हुए दरबारियों और जनता पर एक उचटती सी निगाह डालते हुए मेघसिंह से कहा- प्रधानमंत्रीजी ! हमारी रानी रसकपूर को भी सम्मान के साथ दरबार में ले आयें।

हलचल की हलकी सी एक काँपती लहर पूरे दरबार में उभर आई। महाराज की तेज़ नज़र से यह नहीं छिपा रह सका कि उनके आदेश पर मेघसिंह ने छिपी नज़र से बोहराजी और ठाकुर चाँदसिंह को देखा। एक अनकहे अन्तर्विरोध के साथ वे बाहर गये और थोड़ी ही देर में रसकपूर ने दरबार में प्रवेश किया। वह सीधी, महाराज को देखती हुई, उनके निकट जा पहुँची। महाराज को उसने झुककर प्रणाम् किया। महाराज ने इशारे से उसे अपने पास वाले सिंहासन तक पहुँचने का आदेश दिया। फिर महाराज ने बैठते हुए कहा- आप सब भी तशरीफ़ रखिये। महाराज आज पहली बार इतनी देर तक सिंहासन के

पास खड़े रहे थे। वे जानते थे कि अगर वे बैठ गये तो रसकपूर की अगवानी शायद ये दरबार उस सम्मान से न करे।

महाराज के आदेश पर सारा दरबार बैठ गया। सारी निगाहें रसकपूर पर टिकी हुई थीं। कभी वो सूरज की प्रचण्ड किरण सी लगती तो कभी चाँद से झरती हुई शीतल चाँदनी सी। कभी वो महाराज के तेज के प्रति आकर्षित सूरजमुखी सी लगती, तो कभी चाँद की मुग्धा कुमुदिनी सी। कभी वो रूप-सरोवर में खिले संगीत-कमल सी लगती तो कभी चाँदनी के साये में फैली मदहोशी की चादर सी। लोग अपनी सुध-बुध खोये, साँस रोके, अपलक उसे निहार रहे थे। वास्तव में ऐसा लग रहा था जैसे सूरज और चाँद दोनों एक साथ, अलग-अलग, सिंहासन पर विराजमान हों।

राव-राजों और ठाकुरों को ऐसा लगा जैसे असीम धनराशि के समक्ष कोई भिखारिन बैठी हो। मखमल के लिबास में किसी गरीब का आँसू टँक गया हो। सूरज को जैसे ग्रहण लग गया हो और चाँद के पास आकर कोई कालरात्रि बैठ गई हो। किसी विषकन्या के हाथ में अनायास जैसे अमृतघट आगया हो। दृष्टि, मन के रथ पर बैठकर, वही देखती है जो मन देखना चाहता है। और अपने-अपने मन की आँखों से लोग रसकपूर को अपने इच्छित रूपों में देख रहे थे। इन सबसे दूर, कोने में बैठा चंदन अपनी नज़रें ही नहीं उठा पारहा था। रसकपूर को देखने का कौतूहल उसे दरबार तक तो ले आया था, लेकिन अब उसे आँखें उठाने का साहस नहीं हो पारहा था। वह रसकपूर को किसी और की हुई देख पाने की स्थिति में शायद नहीं था।

महाराज का संकेत पाकर मेघसिंह सबसे पहले उठे और उन्होंने आगे बढ़कर रसकपूर को नजराना पेश किया। इसके बाद तो एक अटूट ताँता सा लग गया। लोग रसकपूर के सामने आते, झुकते और नजराना पेश करते। रसकपूर गद्‌गद् सी, भावविभोर हुई कभी नजराने को देखती, कभी पास बैठे

महाराज को। केसर हर नज़राने को, रानीजी के छूने के बाद, लेकर पीछे रखती जारही थी। मिश्रजी ने जब झुककर नज़राना पेश किया तो अचानक रसकपूर की आँखें भर आईं। उसने मुँह मोड़ते हुए उनका नज़राना कबूल किया। यह कार्य जल्दी ही सम्पन्न हो गया। महाराज ने देख लिया था कि बोहराजी और दूनी ठाकुर रसकपूर के सामने पेश नहीं हुए थे लेकिन वक़्त की नज़ाकत समझते हुए इसे उन्होंने अनदेखा कर दिया।

अब दरबार का कार्य शुरू हुआ। मेघसिंह ने विचाराधीन प्रकरण महाराज के सम्मुख प्रस्तुत करने प्रारम्भ किये। महाराज प्रकरण सुनते, रसकपूर से सलाह लेते और यथोचित आदेश फ़रमा देते। इसी क्रम में मेघसिंह दूनी की विरासत वाला मामला भी पेश कर गये। इसे सुनते ही महाराज बोले– मेघसिंह जी ! इस पर तो हमने आपको पहले ही आदेश दिया था कि इस किस्से को पूरी तरह से सुन–समझकर रसकपूर फ़ैसला देंगी।

यह सुनते ही दूनी ठाकुर तमतमा कर उठते हुए बोले– अन्नदाता ! हम आपके ताबेदार हैं। हमारा सिर आपके आगे झुकता है लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि हम कोठों की बाइयों के आगे भी झुक जाएँगे। मेरे प्रकरण का फ़ैसला आप ही फ़रमादें।

महाराज अचानक खड़े होगये। सारा दरबार खड़ा होगया। महाराज ने क्रोध में काँपते हुए कहा– दूनीठाकुर ! तुम इस रियासत की रानी का अपमान कर रहे हो। रसकपूर इस रियासत का शासन चलाती है। तुम जानते हो, तुम्हारा अपराध कितना भयंकर है ?

दूनी ठाकुर ने उसी तेवर से कहा– अन्नदाता ! मृत्युदण्ड से ज़्यादा आप और क्या दे सकते हैं ! लेकिन, माईबाप ! ये सिर आपके अलावा किसी और के आगे नहीं झुक सकता। आप मुझे मेरे ठिकाने से बेदख़ल करदें लेकिन मैं अपने कुल की आन

नहीं छोड़ूँगा।

महाराज ने उसी लहज़े में पूछा– क्या तुम्हारे कुल की यही आन है कि तुम हमारी रानी का अपमान करो ?

–अन्नदाता ! रानीजी के अपमान करने की बात मैं सपने में भी नहीं सोच सकता।

–तो फिर रसकपूर का अपमान करने की हिम्मत तुम कैसे कर गये ?

–क्योंकि अन्नदाता, ये रानी नहीं रखैल हैं।

महाराज का हाथ अचानक अपनी तलवार की मूँठ पर चला गया। वे चिल्लाये– चाँदसिंह ! तुम अपनी हद से बहुत आगे बढ़ गये हो। जानते हो इसकी सज़ा ?

सारा दरबार स्तब्ध हो उठा।

दूनी ठाकुर ने धीरे से कहा– अन्नदाता ! मैं पहले ही अर्ज़ कर चुका हूँ। मैं तैयार हूँ मौत की सज़ा पाने के लिए।

–मौत कबूल करोगे लेकिन रानी की इज़्ज़त नहीं करोगे ?

–रानी की इज़्ज़त करना मेरे खून मे है, अन्नदाता !

–और राजा की ?

–आप हमारे मालिक है, माई–बाप है, अन्नदाता हैं। हम आपकी प्रजा है। रियाया हैं।

–तो ठीक है, चाँदसिंह। हम देखते हैं, तुम अपनी ज़िद पर कब तक कायम रहोगे ? हम इसी वक़्त अपनी रियासत का बँटवारा करते है। मेघसिंह हुक़्मनामा जारी करो कि हम आधी रियासत का राज रसकपूर को सौंपते हैं। रसकपूर हमारी तरह ही आधी रियासत का पूरा शासन चलायेगी। उसके अपने सिक्के और अपनी फ़ौज होगी। वो अपनी रियासत के प्रकरणों का ख़ुद फ़ैसला करेगी और दूनी ठिकाना भी उसकी रियासत का एक अंग होगा।

इतना कह, महाराज ने सारे दरबारियों और दर्शकों से कहा– अपनी नई रानी का, रियासत के नये शासक का आप सब लोग स्वागत करें।

सारा दरबार रानी रसकपूर की जय के तुमुल घोष से गूँज उठा। रसकपूर ने अभिवादन स्वीकारने के लिए हाथ तो जोड़ दिये लेकिन उसे लगा जैसे वह मोम की पुतली की तरह पिघलती जारही है। सपने देखने वाला उसी सपने को अगर सामने खड़ा हुआ देखले तो उसे छूने का साहस नहीं कर पाता।

महाराज और रसकपूर चलने को हुए तो चाँदसिंह ने फिर कहा– मालिक! खूब किया आपने मेरी तक़दीर का फ़ैसला, हुज़ूर! आप यक़ीन रखें मैं टूट जाऊँगा, झुकूँगा नहीं।

महाराज ने रुककर मेघसिंह को कहा– प्रधानमंत्री! दूनी ठिकाने की आमदनी का चौगुना जुर्माना ठाकुर चाँदसिंह पर किया जाता है। हुक्मनामा जारी कर दिया जाए।

महाराज और रसकपूर कसैले मन से दरबार से चले गये।



मोतीचूर के लड्डुओं का थाल केसर को देते हुए गैंदा बोला– केसर रानी! जयपुर रियासत का तो इतिहास ही बदल गया। एक रियासत में दो राजा हो गये। तुम्हारी रानी एक अलग रियासत की हाकिम बन गईं। तुम्हें बहुत-बहुत बधाई।

–गैंदा! बधाई तो ठीक है लेकिन जिस तरह आज दरबार खत्म हुआ, ऐसा कभी नहीं हुआ। और दरबार में जैसे दूनी ठाकुर बोले उसे महाराज न जाने क्या सोचकर सह गये। मुझे तो बड़ा डर लग रहा है।

–कहती तो तू ठीक है, केसर! दूनी ठाकुर चुप रहने

वाले नहीं है। लेकिन महाराज भी अपनी जिद के पक्के हैं। पता नहीं, *क्या कर बैठें !*

–वो कुछ भी करें लेकिन राव–राजों और ठाकुरों को नाराज़ नहीं कर सकते। एक ओर मराठों का आतंक, दूसरी ओर टोंक के पिंढारी की लूटमार और तीसरे अँग्रेजों की दिनरात की धमकियाँ। ऐसी हालत में रियासत की सुरक्षा कैसे हो पायेगी ?

–सुना है, महाराज ने अंग्रेजो से कोई समझौता कर लिया है।

–उससे क्या बनने–बिगड़नेवाला है। बंजर में पेड़ लग सकते हैं लेकिन वफ़ादारी का पौधा हर जमीन मे नहीं पनप सकता। रियासत का शासन बिना वफ़ादारी के नहीं चलता।

–सो तो ठीक है, केसर ! लेकिन मुझे तो चिन्ता तेरी रानीजी की है।

–तुझे किस बात की चिन्ता है ?

–देख, रानीजी का न तो दरबार में कोई अपना है, न महलों में। इतना ही नहीं दोनों जगह उनके दुश्मन हैं जो नहीं चाहते कि रानीजी इन महलों मे रहें और महाराज दिन–रात उनकी अँगुली पकड़ कर चलें। महाराज अपने सारे रिश्तों को ताक पर रखदें।

–यह तो सच है, गैंदा ! रिश्ते जब रिसने लगते हैं तो मुँह से शोले और आँखों से खून बरसने लगता है। आज महाराज सारे रिश्तो को टूटने के कगार पर ले आए हैं। कौन सहन करेगा, इस तरह अपनी रुसवाई।

–कौन किसकी रुसवाई कर रहा है ? मैं कुछ समझा नहीं, केसर !

–सारे दरबारी और रानियो के ख़्याल मे नई रानीजी ने सबको रुसवा किया है।

–रुसवा कोई करता नहीं, केसर ! आदमी, अपने आप,

अपने आचरण से ख़ुद रुसवा होता है।

–तू आम आदमी की बात कर रहा है, गैंदा ! महल इल्ज़ाम उठाने के लिए नहीं, इल्ज़ाम लगाने के लिए होते हैं।

–केसर ! अब बहुत होलिया। मैंने तेरा मन रखने के लिए इतनी बात करली।

–क्या मतलब ?

–अरे, मैं तो तेरी रानी के महल आने और रियासत की हाकिम बनने पर तुझे बधाई देने आया था। तू सियासत का पचड़ा ले बैठी। जो कल होगा सो कल देखा जाएगा। बीते हुए कल की पीड़ा और आने वाले कल की आशंका में आज को गुज़ार देना कहाँ की अक्लमंदी है।

–तो बोल, आज क्या करें ?

–हम भी झूमें, नाचें, गायें, जश्न मनायें और––

–और ?

–और, एक–दूसरे में खोजाएें।

–जा भाग यहाँ से। आगया ना अपनी औकात पर। मुझे रानीजी की ख़िदमत में पहुँचना है।

–तो मैं, तुम्हारी वापसी का, यही बैठकर इंतज़ार करूँगा।

–करते रहना इंतज़ार, मैं तो चली।

–इसका क्या मतलब हुआ ?

–जो तेरी समझ में आये वो मतलब निकाल लेना। इतना कह केसर वहाँ से भाग छूटी।



दरबार से रसकपूर सीधी अपने महल मे पहुँची और पलंग पर आसमान से टूटे तारे की तरह गिरी और पसर गई। उसकी आँखों में आँसुओं के दिये झिलमिला रहे थे। उसने न तो कभी रानी बनने के सपने देखे थे और न ही किसी रियासत का हुक्मरान उसे बनना था। महाराज की जिन्दगी में आने पर उसे लगा कि ज़िन्दगी बहारों के साये में भी गुज़र सकती है। उसे रखैल शब्द से बचपन से ही घृणा थी। वो अपनी माँ का अकेलापन, फीकी मुसकराहट और दिखावे की दुनियादारी बहुत नज़दीक से देख चुकी थी। जब महाराज ने उसे रानियों जैसी इज़्ज़त बख़्शी तो उसके मन का डर निकल गया और वह महाराज का सशक्त सम्बल पा बेल की तरह उनसे लिपट गई। आज दरबार में महाराज ने जो किया उसे देख वह महाराज पर सौ–सौ जान से कुर्बान होगई। उधर दूनी ठाकुर के तेवरो पर वह अंगारों जैसा बरसना चाहती थी। महाराज ने उस पर जुर्माना कर और उसका ठिकाना उसके आधीन कर उसे अच्छा सबक सिखा दिया। उसकी आँखे दरबार में भी छलकना चाहती थीं। दरबार मे, मिश्रजी को झुकते देख उसके मन मे आदर भी जगा और गुस्सा भी आया। बाप के होते हुए अनाथो सा बीता हुआ बचपन उसे याद होआया। अपनी माँ की याद भी उसे तोड़–तोड़ रही थी। जयपुर मे रहकर भी वह अपनी माँ के कंधो से लगकर रो नहीं सकती थी। महल की देहरी उलाँघ कर वह कैसे जाती अपनी माँ के घर। वह घर, समाज की नज़रो में तो, कोठा ही था। दूनी के ठाकुर ने भरे दरबार में उसे कोठेवाली बाईजी ही तो कहा था। वह उसे भूल नहीं पारही थी।

तभी केसर ने आकर चिरागों को रोशन करना शुरु किया। वह सहमती सी बोली– रानी साहिबा ! तबियत तो ठीक है ना।

रसकपूर चुप रही। केसर उसके नज़दीक आकर बोली– मालकिन, सिर दबादूँ ?

रसकपूर तब भी मौन रही। केसर ने धीरे से उसके सिर

पर हाथ रखा तो वह घबरा सी गई और बोली– रानी साहिबा ! सिर गरम सा लग रहा है, थोड़ा चंदन का लेप कर देती हूँ।

और केसर चंदन का लेप लाने चली गई। रसकपूर धीरे से उठी और आईने के सामने खड़ी होकर अपना चेहरा देखने लगी। उसने अचानक देखा कि चंदन उस आईने के एक कोने में खड़ा उसे देख रहा है। वह चौंक सी पड़ी। वह धीरे से बोली– चंदन ! तुम यहाँ ?

–और मैं कहाँ रहूँगा ! जहाँ तुम, वहाँ मैं।

–लेकिन महल में कैसे आगये ?

–तुम्हारे दिल में बैठकर।

–सच–सच बताओ ना।

–मैंने तुमसे कभी ग़लत नहीं कहा। मेरी ग़लती यही रही कि तुम मुझे कभी सही नहीं समझ सकीं। क्या आज तुम बहुत ख़ुश हो ?

–खुश ? खुश तो हूँ ही।

–फिर अपने को धोखा देरही हो, रसकपूर ! महलों की फ़िज़ाँ में ताज़ी हवा दम तोड़ देती है। एक दिन तुम्हारा दम, इस घुटन में, टूट जाएगा।

–नहीं, तुम मुझे डराने की कोशिश कर रहे हो ?

–मैं हक़ीकत कह रहा हूँ, रसकपूर ! ये वो दुनिया है आदमी साँस नहीं लेता, साँस लेने का अभिनय करता है।

–मैं इस दुनिया को बदल के रख दूँगी, चंदन ! मैं बदल दूँगी इस दुनिया के हर रिवाज़ को।

–ये नामुमकिन है, मेरी रानी ! अभी तुम इसे समझ नहीं पाओगी और जब समझोगी तब तक बहुत देर होचुकी होगी।

–क्या महाराज मुझसे आँख फेर लेंगे ?

इतने में ही केसर ने पीछे से आकर पूछा– रानीजी ! अकेले में किससे बातें कर रहीं हैं ?

रसकपूर ने सम्हलकर इधर–उधर देखा । वहाँ उसके और केसर के अलावा कोई नहीं था । वह धीरे से बोली– यों ही, महाराज की बातें याद आगईं थीं ।

–आप लेट जाइये । मैं चंदन का लेप लगादूँ ।

केसर की बात सुन रसकपूर आँखें मूँदकर पलंग पर लेट गई । केसर धीरे–धीरे चंदन का लेप लगाने लगी कि अचानक रसकपूर ने पूछा– केसर ! तू ने क्या किसी से प्यार किया है ?

केसर सहसा कुछ न बोल सकी ।

इस बार रसकपूर ने आँख खोलकर पूछा– तू मेरी सहेली है, मुझे नहीं बताएगी ?

केसर ने सामने की दीवार पर बेवजह निगाहें टिकाते हुए कहा– अब मैं आपसे क्या कहूँ, रानीजी !

–जो सच हो, वह कहदे ।

–अब––अब, मैं आपके सामने––वो क्या है ––

–तू हकला क्यों रही है ? साफ–साफ़ क्यों नहीं कहती ?

–रानीजी ! मैं प्यार करती हूँ । करती हूँ प्यार ।

–कौन है वो ?

–महाराज की सेवा में ही है । हलकारा है । ख़बरें लाने और पहुँचाने वाला । मुझे जी तोड़ के चाहता है । मजाल है, मेरी बिना मर्ज़ी के ––और इतना कहकर वो चुप होगई ।

रसकपूर बोली– अरे ! अधूरा बात क्यो छोड़दी ?

–मुझे लाज आती है, रानी साहिबा !

–अरे, मैं कोई तेरा वो हलकारा थोड़े ही हूँ । मैं तो तेरी सहेली हूँ ।

पर हाथ रखा तो वह घबरा सी गई और बोली– रानी साहिबा ! सिर गरम सा लग रहा है, थोड़ा चंदन का लेप कर देती हूँ ।

और केसर चंदन का लेप लाने चली गई । रसकपूर धीरे से उठी और आईने के सामने खड़ी होकर अपना चेहरा देखने लगी । उसने अचानक देखा कि चंदन उस आईने के एक कोने में खड़ा उसे देख रहा है । वह चौंक सी पड़ी । वह धीरे से बोली– चंदन ! तुम यहाँ ?

–और मैं कहाँ रहूँगा ! जहाँ तुम, वहाँ मैं ।

–लेकिन महल में कैसे आगये ?

–तुम्हारे दिल में बैठकर ।

–सच–सच बताओ ना ।

–मैंने तुमसे कभी ग़लत नहीं कहा । मेरी ग़लती यही रही कि तुम मुझे कभी सही नहीं समझ सकीं । क्या आज तुम बहुत ख़ुश हो ?

–खुश ? ख़ुश तो हूँ ही ।

–फिर अपने को धोखा देरही हो, रसकपूर ! महलों की फ़िज़ाँ में ताज़ी हवा दम तोड़ देती है । एक दिन तुम्हारा दम, इस घुटन में, टूट जाएगा ।

–नहीं, तुम मुझे डराने की कोशिश कर रहे हो ?

–मैं हक़ीकत कह रहा हूँ, रसकपूर ! ये वो दुनिया है जहाँ आदमी साँस नहीं लेता, साँस लेने का अभिनय करता है ।

–मैं इस दुनिया को बदल के रख दूँगी, चंदन ! मैं बदल दूँगी इस दुनिया के हर रिवाज़ को ।

–ये नामुमकिन है, मेरी रानी ! अभी तुम इसे समझ नहीं पाओगी और जब समझोगी तब तक बहुत देर होचुकी होगी ।

–क्या महाराज मुझसे आँख फेर लेंगे ?

इतने मे ही केसर ने पीछे से आकर पूछा– रानीजी ! अकेले मे किससे बातें कर रही है ?

रसकपूर ने सम्हलकर इधर–उधर देखा । वहाँ उसके और केसर के अलावा कोई नहीं था । वह धीरे से बोली– यों ही , महाराज की बातें याद आगईं थीं ।

–आप लेट जाइये । मैं चंदन का लेप लगादूँ ।

केसर की बात सुन रसकपूर आँखें मूँदकर पलंग पर लेट गई । केसर धीरे–धीरे चंदन का लेप लगाने लगी कि अचानक रसकपूर ने पूछा– केसर ! तू ने क्या किसी से प्यार किया है ?

केसर सहसा कुछ न बोल सकी ।

इस बार रसकपूर ने आँख खोलकर पूछा– तू मेरी सहेली है, मुझे नहीं बताएगी ?

केसर ने सामने की दीवार पर बेवजह निगाहें टिकाते हुए कहा– अब मैं आपसे क्या कहूँ, रानीजी !

–जो सच हो, वह कहदे ।

–अब––अब, मै आपके सामने––वो क्या है ––

–तू हकला क्यों रही है ? साफ़–साफ़ क्यों नहीं कहती ?

–रानीजी ! मैं प्यार करती हूँ । करती हूँ प्यार ।

–कौन है वो ?

–महाराज की सेवा में ही है । हलकारा है । खबरे लाने और पहुँचाने वाला । मुझे जी तोड़ के चाहता है । मजाल है, मेरी बिना मर्ज़ी के ––और इतना कहकर वो चुप होगई ।

रसकपूर बोली– अरे ! अधूरी बात क्यों छोड़दी ?

–मुझे लाज आती है, रानी साहिबा !

–अरे, मै कोई तेरा वो हलकारा थोड़े ही हूँ । मै तो तेरी सहेली हूँ ।

–मेहरबानी है आपकी, रानीजी !

–उससे मिलती है ?

–हाँ ।

–कब ?

–वो अपने आप ही सूँघता हुआ चला आता है ।

–अब कहाँ होगा ?

–मेरे लौटने का इंतज़ार कर रहा होगा ।

–अच्छा । तो फिर तू यहाँ क्या कर रही है ?

–जी !

–अरे, जा ना ।

–नहीं, रानीजी ! मैं उसे कह आई थी कि आज बस इंतज़ार ही करते रहना ।

–नहीं, ये ठीक नहीं, केसर ! तू जा, महाराज आते ही होंगे । और अब मेरी तबियत भी सम्हल गई है । सवेरे जल्दी आजाना ।

और रसकपूर ने केसर के मना करते रहने पर भी उसे ज़बर्दस्ती भेज दिया ।

केसर जब दबे पाँव जा रही थी तो महारानी भटियाणी के महल में धीरे-धीरे हो रही बातों ने उसे चौंका दिया । वह खुली खिड़की के पास कान लगाकर खड़ी होगई । उसने सुना, महारानी कह रही थीं- बोहराजी ! आप हमारे ससुर की तरह हैं । क्या आप हमारी ऐसी बेइज्ज़ती देखकर भी चुप रहेंगे ?

–नहीं महारानीजी ! हम इसे बर्दाश्त नहीं कर सकते और बर्दाश्त करेंगे भी नहीं । अभी महाराज को नया-नया जोश है, इसे उतर जाने दें । वैसे आपने सुन ही लिया होगा, ठाकुर चाँदसिंह ने आज दरबार में क्या किया ! बोहराजी ने दूनी ठाकुर की ओर देखते हुए कहा ।

महारानी भटियाणी बोली– चाँदसिंहजी ! आप रियासत के सम्बन्धी है। महाराज के सगे है। तो क्या हम आपकी कुछ नहीं हुई ?

–महारानीजी ! आपके हुक्म पर, एक इशारे पर चाँदसिंह अपना सिर क़लम करवा देगा। आप हुक्म देकर तो देखिए।

–तो, भैया ! हमे बताओ, ये दर्द हमें कबतक सहना होगा ?

–महारानीजी ! थोड़ा धीरज रखिये। दूध का उफ़ान उतर जाने दीजिए। दूध में पड़ी मक्खी की तरह उस बाईजी को मसल कर फैंक दूँगा।

तभी महारानी ने मेघसिंह की ओर देखते हुए कहा– और मेघसिंह ! आप ले गये थे उस चुड़ैल को दरबार में ?

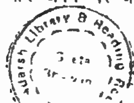
मेघसिंह ने हाथ जोड़ते हुए कहा– महारानीजी। मेरी विवशता तो आप बोहराजी और चॉदसिंहजी से पूछलें। मेरा वश चलता तो भला ऐसा होता ?

–मेरा तो दिन का चैन और रातो की नींद सब इस बाईजी ने चुरा लिये हैं। एक लम्बी सॉस छोड़ते हुए महारानी ने कहा।

बोहरा दीनाराम अपने सधे हुए स्वर में बोले– इस बाईजी को दीवार मे चुनवा देंगे, महारानी ! आपका नमक खाया है। आपके आँसुओं के नमक को बर्बाद नहीं होने देंगे। उस कर्ज़ को ब्याज समेत चुकायेंगे। महाराज आज दरबार से सीधे ही शिकार पर निकल गये। उनसे भी वक़्त आने पर बात करेंगे। ये जवानी का बुख़ार है, जल्दी ही उतर जायेगा।

थोड़ा रुककर बोहराजी ने कहा– अब हमे आज्ञा दीजिए और आप निश्चिन्त होकर आराम कीजिए।

केसर इसके बाद अपने घर जाने की बजाय वापिस



अपनी रानी के महल की तरफ़ लौट पड़ी। उसके माथे पर, सर्दी होते हुए भी, पसीने की बूँदे उभर आई थीं।

रसकपूर धीरे-धीरे टहल रही थी। केसर को वापिस आया देख वह बोली- तूने हमारा कहा नहीं माना और वापिस लौट आई ?

-मैं क्या करूँ, रानीजी ! अगर मेरे कान न होते तो कभी लौटकर नहीं आती।

-क्या मतलब ? ये पहेलियाँ क्यों बुझा रही है ?

-आप बैठिये तो सही।

रसकपूर ने पलंग पर बैठते हुए कहा- ले, बैठ गई। तू भी बैठजा।

केसर नीचे बैठ गई। रसकपूर ने पूछा- हाँ, अब बता, क्या बात है ?

-सबसे पहली बात तो यह कि महाराज शिकार खेलने गये हैं।

-शिकार खेलने ? और मुझे बताया तक नहीं। तुझे किसने कहा ?

इसके बाद केसर ने महारानी भटियाणी के महल में हुई बातें रसकपूर को विस्तार से बतादीं।

रसकपूर के चेहरे पर एक भाव आरहा था, एक जारहा था। बोहराजी की बात सुन वह काँप सी गई।

थोड़ी देर में सहज होते हुए रसकपूर ने कहा- केसर ! जब लड़ाई शुरु हो ही गई है तो इसे पूरे जतन से लड़ना पड़ेगा। मैं अकेली ही काफ़ी हूँ इन लोगों को सबक़ सिखाने के लिए। सबसे पहले तो मैं इस मेघसिंह को देखती हूँ जिसने नज़राना तो मुझे दिया और नज़र उधर मिला रहा है।



महाराज जब शिकार से लौटे तो सुबह हुआ चाहती थी। वे सीधे रसकपूर के महल की ओर गये। रसकपूर को दरवाज़े के बीच में बैठे हुए आसमान को तकता देख महाराज ठिठक से गये। उन्होंने धीरे से रसकपूर के कंधों पर हाथ रखते हुए पूछा- रानी ! आपने आराम नहीं किया ? यहाँ बैठी क्या कर रही हैं आप ?

रसकपूर ने उठते हुए कहा- हुजूर ! आसमान को बराबर देखते रहने वाला थक तो जाता है, लेकिन न वह आसमान छूपाता है और न आसमान उसकी मुट्ठियोंमें समाता है।

पलंग पर बैठते हुए महाराज बोले- हम कुछ समझे नहीं, रानी !

-आप भी मेरे लिए आसमान के समान हैं।

-क्या मतलब ?

-आप शिकार पर चले गये। मुझे कोई ख़बर नहीं। मैं परेशान हो उठी। खाने पर इंतज़ार करते-करते भोर होगई तो मैं देहरी के बीच आकर बैठ गई और आसमान देखने लगी।

अपने पास खड़ी रसकपूर को खींचकर अपने पास बिठाते हुए महाराज बोले- हमें माफ़ करदे, रानी, हम दरबार की ज़िल्लत से परेशान होकर शिकार खेलने निकल गये। हमे आप तक सूचना भिजवाने का होश ही नही रहा। हम कुसूरवार हैं, हमें सज़ा दें आप।

-पता नहीं, इस बेजान दिल में, रात भर कितने-कितने डरावने ख़्याल आते-जाते रहे।

-माफ़ी माँगने के बाद फिर वही चर्चा ! अच्छा, ये बताइये आपने खाना खालिया ?

-मैं, आपके बिना, खा सकती थी क्या ?

–ओह, यह एक और गुनाह होगया। चलिये अब खाते हैं।

–अब तो सुबह हुआ चाहती है।

–आपकी ज़ुल्फ़ों के साये तले बैठ जाएँगे। हमारे लिए तो सुबह भी रात बन जाएगी।

–अब, आप पर कोई गुस्सा भी करे तो कैसे ?

–क्यों ?

–क्योंकि आपको देखकर कोई गुस्सा कर ही नहीं सकता।

रसकपूर को अपने सीने से लगाते हुए महाराज बोले– मेरी प्यारी रानी ! तुम्हें देखकर भी तो यही होता है। दिल में सिर्फ़ प्यार जाग उठता है।

फिर थोड़ा रुककर महाराज बोले– हमें आज दरबार में मेघसिंह का व्यवहार कुछ बदला लगा। बोहराजी और चाँदसिंह की बात तो हम समझ सकते हैं। वे बुज़ुर्ग हैं और वह जोशीला जवान। लेकिन इस मेघसिंह को क्या हुआ ?

–मैं समझी नहीं, अन्नदाता !

–वो बात हमारे समझने की थी और हम समझ गये।

–अगर महाराज के दिल को कोई बात चुभी है तो काँटे को तुरन्त निकाल फैंकने में ही फायदा है। हुज़ूर ! अगले आदमी को यह अहसास हो जाए कि महाराज ग़लती पकड़ तो लेते ही हैं, उसकी सज़ा भी लगे हाथ ही दे डालते हैं। दूनी ठाकुर पर आपके जुर्माना करने से जनता और दरबार दोनों की ही आँखें खुल गईं।

–सच ?

–और नहीं तो क्या !

–तुमसे किसने कहा ?

–किसने नहीं कहा ? आपके आगे चलते रहने पर जो लोग तब मुझे आदाब पेश करने आये, उन्होंने कहा।

–क्या कहा ?

–एक ने कहा– महाराज को दूध का दूध और पानी का पानी करने में देर नहीं लगती तो दूसरे ने कहा– उनके मुँह से तो स्वयं इंसाफ़ की देवी बोलती है।

–अच्छा ! तो फिर सुनो, रानी ! हम कल मेघसिंह को उसके पद से हटा देंगे।

–हुकूमत सही ढंग से चलाने के लिए कुछ तो अप्रिय फैसले करने ही पड़ते हैं, अन्नदाता !

–तो तुम्हारी राय में हमारा ये फ़ैसला ठीक है ?

–आपका ये फैसला जनता और दरबारियों को फिर चौंकन्ना कर देगा। वे फिर समझ जाएँगे कि महाराज से किसी चीज़ का छिपना मुमकिन नहीं।

रसकपूर को फिर अपने सीने से लगाते हुए महाराज ने कहा–हमारा तो हौसला और फ़ैसला सब तुम्हारे दम से है, रानी !



प्रधानमंत्री के अचानक हटा दिये जाने की ख़बर से शहर में एक हड़कम्प सा उठ खड़ा हुआ। ज्यादातर दरबारियो और जनता ने इसे रसकपूर के फ़ैसले के रूप में लिया। दरबार में चाँदसिंह के व्यवहार पर प्रधानमंत्री का ख़ामोश रहना ही शायद, लोगों की राय में, उनके हटाये जाने का कारण बना।

चाँदसिंह ने दीनाराम बोहरा के घर जाकर कहा– सुन लिया आपने आज का धमाका ! बाईजी का खेल शुरु होगया।

–रखैल खेल नहीं करेगी तो और क्या करेगी, ठाकुर !

–लेकिन क्या हम लोग यों ही हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे ?

–और कर भी क्या सकते हैं ?

–ये आप कह रहे हैं, बोहराजी !

–हाँ, ठाकुर ! ये सिर की चाँदी मैंने तजुर्बे से पाई है । अपने सफ़ेद बालों की ओर इशारा करते हुए बोहराजी ने कहा ।

–लेकिन कुछ तो उपाय करना ही पड़ेगा ना ।

–किसने मना किया इस बात से ? लेकिन वक़्त का तो इंतज़ार करना ही पड़ेगा ।

–वक़्त का इंतज़ार करने वालों को वक़्त रास नहीं आता ।

–बेसब्री वक़्त से पहले ही आदमी को तोड़ देती है ।

–तदबीर से मुकद्दर सँवर जाते हैं ।

–तदबीर हमेशा ही मंज़िल तक नहीं पहुँचाती ।

चाँदसिंह ने खड़े होते हुए कहा– मैं बड़ी उम्मीद लेकर आया था आपके पास ।

बोहराजी ने उन्हें फिर बैठने का संकेत करते हुए कहा– ठाकुर ! तुम बहुत उतावले हो । उतावली से बनते हुए काम भी बिगड़ जाते हैं । तुम ठंडे दिल से सोचो कि आज के हालात में हम लोग क्या [illegible] हैं ?

–अच [illegible] नया [illegible] न बनेगा ?

–हु [illegible]

–तब [illegible]

–इस [illegible]

–पं [illegible]

–कौन ? मिश्रजी ?

–हाँ

–क्यों नहीं वन सकता ?

–वाईजी के सामने सवसे ज्यादा वही झुका था ।

अभी वे ये वात कर ही रहे थे कि मिश्रजी ने दूर से ही कहा– पा लागूँ, वोहराजी !

वोहराजी खड़े हुए तो चाँदसिंह भी खड़े हो गये । वोहराजी वोले– आइये, पंडितजी ! आपकी वड़ी लम्वी उम्र है ! अभी–अभी आपका जिक्र छिड़ा था ।

–सव खैरियत तो है ना ?

–यह तो आप वतायें । वैठिये । कहां से आ रहे हैं ?

सवके वैठने पर मिश्रजी ने कहा– मेघसिंह से मिलने गया था । अचानक खवर सुनी तो तो यक़ीन नहीं हुआ ।

–मुझे तो राज की वर्वादी के दिन नजर आ रहे है । चाँदसिंह ने वीच में अपनी वात उछालते हुए कहा– अव इसकी थोड़ी–वहुत साज–सम्हाल हो सकती है तो पंडितजी आप ही कर सकते है ।

–हम तो वोहराजी के पीछे हैं, ठाकुर ! इनका जैसा हुक्म होगा, वैसा हमारा काम ।

मिश्रजी की वात सुन सहसा वोहराजी कुछ नहीं वोले । वे जानते थे कि पंडित अति महत्त्वाकांक्षी है । लेकिन वे पंडित की वात की थाह नापना चाहते थे । यह जानते हुए भी कि सागर की थाह नापी जा सकती है लेकिन नारी के हृदय और पुरुष की वात की थाह पाना असंभव है, वोहराजी मिश्रजी की वात को पल्ले से झाड़ते हुए वोले– पंडितजी ! आप यह वताये कि नया प्रधानमंत्री कौन वन सकता है ?

–कौन वन सकता है ? ये कैसी वात कर रहें है आप,

तुम

बोहराजी !

–क्या मतलब ?

–खुशालीराम बोहरा ने गद्दी सम्हाल भी ली।

–क्या---क्या खुशालीराम प्रधानमंत्री बन गया ? बोहराजी की आँखें हल्की सी बड़ी हो गई।

–जी हुज़ूर ! मैं उनसे अभी–अभी मिलकर आ रहा हूँ।

चाँदसिंह उठते हुऐ बोले– पंडित यहाँ भी बाज़ी मार ले गया। चलिये बोहराजी, छोटे बोहराजी को मुबारकबाद तो पेश कर आयें।

और तीनों ही उठकर बाहर निकल गये।



दशहरे और होली पर महाराज अपनी प्रजा के बीच आजाते। उनकी सवारी निकलती और सारा जयपुर रंग और ख़ुशबू में डूब जाता। महाराज ख़ुद अपनी सोने की पिचकारी से कुंकुम बिखेरते और गुलाल उड़ाते। हाथी पर बैठे चलते हुए वे ऐसे लगते जैसे काले बादलों को अपने चरणों से दबाए चाँद खिलखिलाता हुआ अटखेलियाँ कर रहा हो।

लेकिन इस बार की होली नया ही रंग लेकर आने को थी। जयपुर की दोनों रियासतों के हुक्मरान एक साथ हाथी पर बैठकर होली खेलने के लिए निकलने वाले थे। आज तक महल की कोई पर्दानशीन रानी, इस तरह सरे बाज़ार, और वो भी होली के दिन, कभी नहीं निकली थी।

होली खेलने का इंतज़ाम ज़ोरों–शोरों से चल रहा था। केसर, कुंकुम, चंदन के साथ जुही, बेला, चमेली, क़ेवड़ा, गुलाब के इत्रों से रंग तैयार किये जा रहे थे।

कहीं घोड़ों की मालिश हो रही थी। कहीं रथों को रँगा जा रहा था। कहीं पालकियाँ सजाई जा रहीं थीं। चाँदी के हौदों को चमकाया जा रहा था और हाथियो के लिए हीरे-पन्ने, सलमा-सितारे जड़े झोल तैयार किये जा रहे थे। चाँदी के छत्र की मखमल पर सितारे टाँके जारहे थे।

होली का त्योहार आया तो पूरे शहर में एक सनसनी सी फैल गई। गाने वालों की कितनी ही मंडलियाँ, नाँचने वालों के अखाड़े, लाठी और तलवार का करतब दिखाने वाले कितने ही नौजवान सुबह से ही महल के बाहर आकर जमा होने लगे थे। सारा शहर भी धीरे-धीरे महल के इर्द-गिर्द उमड़ता चला आया।

सजे हुए पैदल सवार, आभूषणों से लदे घुड़सवार, बेशुमार पालकियाँ और रथो के निकलने के बाद हाथियों के झुण्ड निकले और आखिर में आये महाराज और रसकपूर, सजे हुए हाथी पर, हाथो में सोने की पिचकारियाँ ताने हुए।

महाराज और रानी रसकपूर की जय से आकाश गूँज उठा। हवा में संगीत बिखरने लगा और खुशबुओं का सागर उमड़ने लगा।

हाथी पर चाँद और चाँदनी शरीर धारण किये चल रहे थे। सारे नक्षत्र धरती पर नाँचते-गाते किलोल कर रहे थे।

रसकपूर पिचकारी मारती तो हवा में दूर तक खुशबू की एक लकीर उभर जाती। रसकपूर रंग फैंकते हुए अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से कोई पहचानी सूरत खोजने में उलझी हुई थी। अपने चेहरे पर सहज, मादक मुसकान लिये हाथी पर बैठ चलती हुई रसकपूर के दिल में एक अनदीखा तूफान भी साथ-साथ चल रहा था।

महाराज ने एक-दो बार उसे आवाज़ दी लेकिन रसकपूर सुन नहीं पाई तो महाराज ने उस पर ही पिचकारी चलादी। रसकपूर ने एकदम पलट कर देखते हुए कहा- महाराज! हम

लोग जनता के बीच हैं, अपने महल में नहीं।

–तुम आज मेरी आवाज़ तक नहीं सुन पारही हो ?

–भला, ये मुमकिन है क्या ?

–तभी तो मैंने पिचकारी मारी।

–मैं शर्मिन्दा हूँ, महाराज !

–किस सूरत में उलझ गईं थीं ?

–कैसी बातें कर रहे हैं, हुज़ूर ! मुझे जिस सूरत में उलझना था, उलझ चुकी।

–मैं कह रहा था, जनता कितने प्यार से अपनी रानी का सत्कार कर रही है।

–रानी का नहीं, अपने मनचीते महाराज की चहेती का सम्मान कर रही है।

–हम बातों में तो तुमसे कभी नहीं जीत पायेंगे।

–सब कुछ हारी हुई अपनी दासी से ऐसी बातें करना ठीक नहीं।

–कुल मिलाकर, आज मज़ा आगया रानी !

उधर संगीत की धुनें आसमान को छूने लगीं थीं तो उन्हीं के पीछे अबीर और गुलाल भी आकाश की ओर भागे जा रहे थे। सारा जयपुर रंग और अबीर में डूब गया था। ख़ुशबुओं का समुद्र ठाठें मार रहा था। धरती पर उमड़ते रंग–बिरंगे जन–समुदाय को देख लगने लगता था जैसे आकाश का इन्द्रधनुष धरती पर आकर बिखर गया हो।

दोपहर ढले, यह उत्सव–यात्रा वापिस महलों की ओर मुड़ गई।



टोंक के नवाब अमीर ख़ाँ ने जब सुना कि जयपुर का राजा नॉचनेवाली की ज़ुल्फ़ों के जाल में गिरफ़्तार हो गया है तो वो ज़ोर से हँस पड़ा। उसने अपने सेनापति से कहा– हुस्न का दीवाना, दिल और जिस्म दोनो से, कमज़ोर हो जाता है। जयपुर की रियासत इस वक़्त कमज़ोर है और हमारे ख़ज़ाने भी खाली–खाली से हैं। जयपुर के राजा को जवानी का ख़ज़ाना लूटने दो। हम उसके दौलत के ख़ज़ाने को थोड़ा टटोल लेते हैं।

सेनापति ने सिर झुकाते हुए कहा– जैसी मर्ज़ी हुज़ूर की! कब कूच करना होगा?

नवाब ने हँसते हुए कहा– हमें कोई लड़ाई थोड़े ही लड़नी है, बरखुरदार! हमें तो चुपके से पहुँचना, माल लूटना और ग़ायब हो जाना है। कूच का तो सवाल ही नहीं उठता। एक टुकड़ी सीकर की तरफ़ रवाना कर दो और दूसरी जयपुर की तरफ़, जो मिल जाए वसूल कर लो। आसानी से न मिले तो छीन लो। दौलत हमेशा तलवार से आँख मिलाती है।

–मै समझ गया,सरकार! बिल्कुल समझ गया।

और टोंक से दो टुकड़ियाँ अलग–अलग रवाना हो गईं।

उधर महाराज रसकपूर के साथ फूलो के हिंडोले पर झूल रहे थे। पीछे दो दासियाँ खड़ी उन्हे धीरे–धीरे झोटा देरही थीं। झूले पर छोटा सा मयखाना सजा हुआ था। रसकपूर के एक हाथ में प्याला था, दूसरे से उसने झूले की फूलडोर पकड़ रक्खी थी। महाराज का एक हाथ रसकपूर के कधे पर था और दूसरे से उसका मुँह थामे, उसे वे अपलक देख रहे थे।

रसकपूर ने प्याला महाराज के मुँह से लगाते हुए पूछा– ऐसे क्या देख रहे हैं, मेरे सरताज!

–हम यह समझने की कोशिश कर रहे हैं कि दिनों–दिन तुम्हारा रूप और नशीला कैसे होता जा रहा है?

–ये आपकी नशीली नज़रों का करिश्मा है, सरकार!

[illegible]

–बस, तुम्हारी इसी अदा ने हमें मार रक्खा है, रानी ! तुम बात ऐसी करती हो कि बिन पिये हमारी ज़ुबान लड़खड़ाने लगती है।

–अन्नदाता ! आपकी निगाहें जिसकी झोली में पड़ जाएँ वह इस दुनिया का सबसे अमीर आदमी बन जाता है।

तभी केसर ने आकर कहा– रानीजी ! एक ख़बरनवीस महाराज से अभी मिलना चाहता है।

महाराज ने जवाब देते हुए कहा– उससे कह दो, अभी हम किसी से नहीं मिल सकते।

रसकपूर ने महाराज के कंधे पर सिर टिकाते हुए कहा– ख़बरनवीस, बेवक़्त, बिना वजह नहीं आ सकता, अन्नदाता ! कोई ज़रूरी ख़बर होगी। उसे सुनना ही ठीक है।

–जैसा तुम्हें जँचे, करो। हम तो बेकार ही बीच में बोल पड़े।

–कैसी बातें कर रहे हैं, हुज़ूर ! आपके हुक़्म से ही तो मैं इतनी आज़ादी ले लेती हूँ, वरना मेरी मजाल ?

थोड़ा रुककर उसने कहा– जाओ, उस ख़बरनवीस को भेजदो, केसर ! और वह ख़ुद झूले से उठकर टहलने लगी।

ख़बरनवीस ने महाराज और रानी साहिबा को आदाब पेश करने के बाद कहा– अन्नदाता ! टोंक के अमीर ख़ाँ की फ़ौज़ ने पूरा जयपुर घेर लिया है और चारों ओर लूटमार मचा दी है।

रसकपूर चिल्लाती सी बोली– प्रधानमंत्री को तुरन्त साथ लेकर आओ।

महाराज ने अपने हाथ से प्याला उठाकर एक घूँट ले लिया। वे आश्वस्त थे कि रसकपूर, राज्य की इन रोज़मर्रा की समस्याओं से अपने आप निबट लेगी।

थोड़ी देर में प्रधानमंत्री ने आकर प्रणाम् किया।

रसकपूर ने उन्हें देखते ही कहा-प्रधानमंत्रीजी! वो टोंक का पिंढारी जयपुर को लूट रहा है और आप आराम फ़रमा रहे है ?.

–मैं––मैं––मुझे तो अभी ख़बर मिली, रानीजी ! अटकते से प्रधानमंत्री बोले।

–फिर क्या किया आपने ख़बर मिलते ही ?

–मैं आपके दरबार में हाज़िर होगया।

–जाइये और सेना को तत्काल प्रजा की हिफ़ाजत के लिए रवाना कीजिए।

–जो हुक्म।

प्रधानमंत्री के जाते ही रसकपूर ने केसर को आवाज़ दी। उसने आकर जैसे ही सिर झुकाया, रसकपूर बोली– अभी, इसी वक़्त मिश्रजी को हमारे सामने हाज़िर होने को कहो।

मिश्रजी का नाम सुन महाराज चौंके कि रसकपूर ने नया प्याला तैयार करके उनके मुँह से लगा दिया।

थोड़ी देर में मिश्रजी सामने खड़े थे। उन्होने झुककर कहा– हुक़्म, अन्नदाता !

जवाब में रसकपूर बोली– हमने आपको इसलिए बुलाया है मिश्रजी, कि अन्नदाता आप पर बड़ा भरोसा करते हैं। टोंक का पिंढारी जयपुर की जनता को लूट रहा है और आप ख़ामोश बैठे हैं। जाइये, सारे बंदोबस्त कर हमें पल–पल की खबर भिजवाइये।

–जो हुक्म, रानी साहिबा ! और सिर झुकाकर मिश्रजी वहाँ से चले गये।

महाराज को रसकपूर ने फिर जब एक घूँट पिलाया तो वे बोले––चलो रानी ! अब आराम करें।

रसकपूर धीरे से बोली– अन्नदाता ! रियासत की सरहद

–बस, तुम्हारी इसी अदा ने हमें मार रक्खा है, रानी ! तुम बात ऐसी करती हो कि बिन पिये हमारी ज़ुबान लड़खड़ाने लगती है।

–अन्नदाता ! आपकी निगाहें जिसकी झोली में पड़ जाएँ वह इस दुनिया का सबसे अमीर आदमी बन जाता है।

तभी केसर ने आकर कहा– रानीजी ! एक ख़बरनवीस महाराज से अभी मिलना चाहता है।

महाराज ने जवाब देते हुए कहा– उससे कह दो, अभी हम किसी से नहीं मिल सकते।

रसकपूर ने महाराज के कंधे पर सिर टिकाते हुए कहा– ख़बरनवीस, बेवक़्त, बिना वजह नहीं आ सकता, अन्नदाता ! कोई ज़रुरी ख़बर होगी। उसे सुनना ही ठीक है।

–जैसा तुम्हें जँचे, करो। हम तो बेकार ही बीच में बोल पड़े।

–कैसी बातें कर रहे हैं, हुज़ूर ! आपके हुक़्म से ही तो मैं इतनी आज़ादी ले लेती हूँ, वरना मेरी मजाल ?

थोड़ा रुककर उसने कहा– जाओ, उस ख़बरनवीस को भेजदो, केसर ! और वह ख़ुद झूले से उठकर टहलने लगी।

ख़बरनवीस ने महाराज और रानी साहिबा को आदाब पेश करने के बाद कहा– अन्नदाता ! टोंक के अमीर ख़ाँ की फ़ौज़ ने पूरा जयपुर घेर लिया है और चारों ओर लूटमार मचा दी है।

रसकपूर चिल्लाती सी बोली– प्रधानमंत्री को तुरन्त साथ लेकर आओ।

महाराज ने अपने हाथ से प्याला उठाकर एक घूँट ले लिया। वे आश्वस्त थे कि रसकपूर, राज्य की इन रोज़मर्रा की समस्याओं से अपने आप निबट लेगी।

थोड़ी देर में प्रधानमंत्री ने आकर प्रणाम् किया।

रसकपूर ने उन्हें देखते ही कहा-प्रधानमंत्रीजी! वो टोंक का पिंढ़ारी जयपुर को लूट रहा है और आप आराम फ़रमा रहे हैं ?

--मैं--मैं--मुझे तो अभी ख़बर मिली, रानीजी ! अटकते से प्रधानमंत्री बोले।

--फिर क्या किया आपने ख़बर मिलते ही ?

--मैं आपके दरबार में हाज़िर होगया।

--जाइये और सेना को तत्काल प्रजा की हिफ़ाजत के लिए रवाना कीजिए।

--जो हुक्म।

प्रधानमंत्री के जाते ही रसकपूर ने केसर को आवाज़ दी। उसने आकर जैसे ही सिर झुकाया, रसकपूर बोली-- अभी, इसी वक्त मिश्रजी को हमारे सामने हाज़िर होने को कहो।

मिश्रजी का नाम सुन महाराज चौंके कि रसकपूर ने नया प्याला तैयार करके उनके मुँह से लगा दिया।

थोड़ी देर में मिश्रजी सामने खड़े थे। उन्होंने झुककर कहा-- हुक्म, अन्नदाता !

जवाब में रसकपूर बोली-- हमने आपको इसलिए बुलाया है मिश्रजी, कि अन्नदाता आप पर बड़ा भरोसा करते हैं। टोंक का पिंढ़ारी जयपुर की जनता को लूट रहा है और आप ख़ामोश बैठे हैं। जाइये, सारे बंदोबस्त कर हमें पल-पल की खबर भिजवाइये।

--जो हुक्म, रानी साहिबा ! और सिर झुकाकर मिश्रजी वहाँ से चले गये।

महाराज को रसकपूर ने फिर जब एक घूँट पिलाया तो वे बोले--चलो रानी ! अब आराम करें।

रसकपूर धीरे से बोली-- अन्नदाता ! रियासत की सरहद

पर आग लगी हुई है। उसके बुझने से पहले आराम कैसा ? आप ज़रूर थक गये हैं, आप लेट जायें।

महाराज झूले से खड़े होते हुए बोले– रानी ! हम फिर तुमसे हार गये। हम तो तुम्हारा इम्तहान लेरहे थे कि तुम्हें हमारे राज्य में कितनी दिलचस्पी है ?

–कब तक आप अपनी कनीज़ का इम्तहान लेते रहेंगे, मेरे मालिक ! क्या आपको मुझ पर भरोसा नहीं ? आँखों में तिरी बदली को अपनी अँगुली से हटाते हुए रसकपूर ने पूछा।

इतने में ही प्रधानमंत्री ने आकर कहा– अन्नदाता ! टोंक के सैनिक लड़ाई नहीं, छिप कर चोरों की तरह वार करते हैं। उनको सबक़ सिखाने के लिए हमें अपनी फ़ौज़ को उसी तरह से तैयार करना होगा।

–आप योजना की बात कर रहे हैं, प्रधानमंत्रीजी ! हमें आज की समस्या का समाधान चाहिये। रसकपूर ने आँखें तरेरते हुए कहा।

–जी––जी, बात तो आप वाज़िब फ़रमा रही हैं। प्रधानमंत्रीजी ने नीचे की ओर देखते हुए कहा।

इस बार महाराज बोले– तो आप भी वाजिब जवाब दें, बोहराजी !

–अन्नदाता ! जो हुक़्म होगा उसकी पूरी तामील की जाएगी।

–गोया, आप हुक़्म का इंतज़ार करते रहेंगे और लुटेरे हमारी प्रजा को लूटते रहेंगे। ठीक है, आप जा सकते हैं। रसकपूर ने थोड़ी तल्ख़ी से कहा।

बोहराजी चले गये।

महाराज बहुत देर तक, टहलती हुई, विचारमग्न रस कपूर को टकटकी लगाये देखते रहे। उन्हें पता था, इस समय रसकपूर अन्तर्द्वन्द्व में ग्रस्त है।

थोड़ी देर में मिश्रजी ने आकर अन्नदाता की जय हो कहा तो रसकपूर एकदम पूछ उठी– कहिये, क्या समाचार लाये ?

–समाचार ? रानी साहिबा ! पिंढारी की फौज को वापिस टोंक के लिए रवाना करके आया हूँ।

–क्या–– क्या कहा ? इस बार महाराज ने पूछा।

–जी, ग़रीब परवर !

–हमें यक़ीन नहीं होता, मिश्रजी !

–क्या मैं अन्नदाता के सामने ग़लत बयानी कर सकता हूँ ?

–गज़ब कर दिया। आपने नामुमकिन काम कर दिखाया, मिश्रजी !

–मैंने तो रानी साहिबा के हुक्म की पालना की है, अन्नदाता !

–हम आपसे बेहद ख़ुश हुए, मिश्रजी ! महाराज आपकी इस कारगुज़ारी का आपको कोई बेशक़ीमती इनाम देंगे। रसकपूर ने, मिश्रजी की आँखों में झाँकते हुए, महाराज को छिपी निगाह से देखते हुए कहा।

मिश्रजी के जाने के बाद महाराज ने महल मे घुसते हुए पूछा– रसकपूर ! तुम्हें अचानक मिश्रजी को बुलाने का ख़्याल कैसे आया ?

–वो, मैंने उस दिन उन्हे दरबार मे देखा था। उनकी आँखों में आपके लिए बड़ी इज्ज़त थी। आँखें तो अक्स होती हैं आदमी के दिल का। आदमी की सच्चाई बरबस आँखों से छलक पड़ती है। बस, आँखो को पढ़नेवाला होना चाहिए। मैंने उस दिन पढ़ी आँख की लिखावट की आज परीक्षा ले ली।

–वाह, रानीजी ! आप का जवाब नहीं। हम तो समझते थे कि ये बिलकुल बेकार का आदमी है। इसने कैसे टोंक की

फ़ौज को वापस भिजवाया होगा।

–बस, यहीं तो दिमाग़ की ज़रूरत पड़ती है। हमारे प्रधानमंत्री तो फ़ौज को नये तरीक़े सिखाने की बात करके चले गये। उन्हें रियासत का दर्द होता तो ऐसी बात कभी नहीं करते।

–रानी, हमने तुम्हारे कहने पर ही तो उन्हें यह ज़िम्मेदारी सौंपी थी।

–मैंने तो, अन्नदाता ! इसलिए कहा था कि बड़े बोहराजी और दूनी ठाकुर को शायद यह अच्छा लगे।

–कैसी बात कर रही हो, रानी ! हम किसी दरबारी को अच्छा लगने के लिए क्या किसी अयोग्य आदमी को शासन की बागडोर सौंप सकते हैं ? ये तुमने हमसे ग़लत फ़ैसला करवा दिया।

–मुझे माफ़ कर दे, मेरे मालिक ! मुझे बस वही एक ख़्याल था। वैसे ऐसा करना राजहित में तो नहीं था। देश की रक्षा वही कर सकता है जो ख़ुद कुर्बान होना जानता हो। कोई राज्य तभी सुरक्षित रह सकता है जब वहाँ का सर्वोच्च व्यक्ति उसकी हिफ़ाजत के लिए ख़ुद ज़हर पी सकता हो।

–वाह, रसकपूर, वाह ! मेरी रानी ! मैं तुम्हें पाकर निहाल हो गया। अब मैं तो ज़िन्दगी भर आराम करूँगा और ये सियासी मामले तुम निबटाती रहना। अच्छा बोलो, आज तुम्हें क्या ईनाम दें ?

–मेरा तो नाम, ईनाम सब कुछ आप हैं, अन्नदाता !

–नहीं, हम इस ऐतिहासिक विजय पर कोई न कोई पुरस्कार तो अवश्य देंगे।

–तो, महाराज ! मुझे पोथीखाना दे दें।

–पोथीख़ाना ! ये क्या माँगा तुमने ?

–सिर्फ़ इसलिए कि जब आप काम में मशगूल हो तो अकेलेपन का अहसास भुला सकूँ। दर्द को भुलाने में किताबों से बढ़कर और कोई मददगार नहीं होता। उस वक़्त मैं पोथीखाने में जाकर कुछ-पढ़ लिया करूँगी।

–जैसी तुम्हारी मर्ज़ी, पोथीखाना तुम्हारा हुआ। कल हुक्मनामा जारी हो जाएगा। हाँ, एक बात और बताओ।

–जी!

–तुम्हारे ख़्याल से मिश्रजी प्रधानमंत्री के रूप में कैसा काम करेंगे?

–हुजूर के ताबेदार हैं। मेरी समझ में तो अपने जी–जान से काम करेंगे। इतना कहते हुए रसकपूर ने अपनी पलकें ऐसे झपकाईं कि महाराज की बेहोशी और बढ़ गई।



गैंदा ने सहसा सामने आकर केसर को चौंका दिया। वह बोली– आधी रात को यहाँ खड़ा क्या कर रहा है?

–बहुत देर से तेरा इंतज़ार कर रहा था

–आज रानीजी ने बहुत देर से छोड़ा। दरवाज़ा खोलकर अन्दर घुसते हुए केसर ने पूछा– कैसे आया, बोल?

–अब तो तेरी रानीजी पूरी तरह रियासत पर छा गई हैं।

–तो कौनसी नई बात हो गई! जो महाराज के दिलोदिमाग़ पर छा गई हो, उसे राज्य पर छाने में कितनी देर लगेगी?

–हाँ, लेकिन केसर! मुझे कुछ अजीब सा लग रहा है।

फ़ौज को वापस भिजवाया होगा।

–बस, यहीं तो दिमाग़ की ज़रूरत पड़ती है। हमारे प्रधानमंत्री तो फ़ौज को नये तरीक़े सिखाने की बात करके चले गये। उन्हें रियासत का दर्द होता तो ऐसी बात कभी नहीं करते।

–रानी, हमने तुम्हारे कहने पर ही तो उन्हें यह ज़िम्मेदारी सौंपी थी।

–मैंने तो, अन्नदाता ! इसलिए कहा था कि बड़े बोहराजी और दूनी ठाकुर को शायद यह अच्छा लगे।

–कैसी बात कर रही हो, रानी ! हम किसी दरबारी को अच्छा लगने के लिए क्या किसी अयोग्य आदमी को शासन की बागडोर सौंप सकते हैं ? ये तुमने हमसे ग़लत फ़ैसला करवा दिया।

–मुझे माफ़ कर दे, मेरे मालिक ! मुझे बस वही एक ख़्याल था। वैसे ऐसा करना राजहित में तो नहीं था। देश की रक्षा वही कर सकता है जो ख़ुद कुर्बान होना जानता हो। कोई राज्य तभी सुरक्षित रह सकता है जब वहाँ का सर्वोच्च व्यक्ति उसकी हिफ़ाजत के लिए ख़ुद ज़हर पी सकता हो।

–वाह, रसकपूर, वाह ! मेरी रानी ! मैं तुम्हें पाकर निहाल हो गया। अब मैं तो ज़िन्दगी भर आराम करूँगा और ये सियासी मामले तुम निबटाती रहना। अच्छा बोलो, आज तुम्हें क्या ईनाम दें ?

–मेरा तो नाम, ईनाम सब कुछ आप हैं, अन्नदाता !

–नहीं, हम इस ऐतिहासिक विजय पर कोई न कोई पुरस्कार तो अवश्य देंगे।

–तो, महाराज ! मुझे पोथीखाना दे दें।

–पोथीख़ाना ! ये क्या माँगा तुमने ?

–सिर्फ़ इसलिए कि जब आप काम में मशगूल हों तो अकेलेपन का अहसास भुला सकूँ। दर्द को भुलाने में किताबों से बढ़कर और कोई मददगार नहीं होता। उस वक़्त मैं पोथीखाने में जाकर कुछ पढ़ लिया करूँगी।

–जैसी तुम्हारी मर्ज़ी, पोथीखाना तुम्हारा हुआ। कल हुक्मनामा जारी हो जाएगा। हाँ, एक बात और बताओ।

–जी!

–तुम्हारे ख़्याल से मिश्रजी प्रधानमंत्री के रूप में कैसा काम करेंगे?

–हुज़ूर के ताबेदार हैं। मेरी समझ में तो अपने जी–जान से काम करेंगे। इतना कहते हुए रसकपूर ने अपनी पलकें ऐसे झपकाईं कि महाराज की बेहोशी और बढ़ गई।



गैंदा ने सहसा सामने आकर केसर को चौंका दिया। वह बोली– आधी रात को यहाँ खड़ा क्या कर रहा है?

–बहुत देर से तेरा इंतज़ार कर रहा था

–आज रानीजी ने बहुत देर से छोड़ा। दरवाज़ा खोलकर अन्दर घुसते हुए केसर ने पूछा– कैसे आया, बोल?

–अब तो तेरी रानीजी पूरी तरह रियासत पर छा गई हैं।

–तो कौनसी नई बात हो गई! जो महाराज के दिलोदिमाग़ पर छा गई हो, उसे राज्य पर छाने मे कितनी देर लगेगी?

–हाँ, लेकिन केसर! मुझे कुछ अजीब सा लग रहा है।

भड़कती लौ अँधेरे के आने का संकेत होती है ।

–कैसी अशुभ बात कर रहा है अपनी जली ज़बान से ।

–मैं सच कहा रहा हूँ, केसर ! सारे हाकिम बदल दिये गये हैं । दीवान नया, कोतवाल नया, महलपाल नया, किलेदार नया, अर्ज़ीनवीस नया, ख़बरनवीस नया । इतना बड़ा फेरबदल किसी रियासत में एक साथ कभी नहीं हुआ ।

–नये पाँव जमाने के लिए पुराने पाँवों के निशान मिटा दिये जाते हैं । इसमें कौनसी नई बात हो गई !

–पुराने पाँव मंजिल का पता देते हैं । नये पाँव मंजिल तक पहुँचने से पहले भटक सकते हैं, केसर !

–तुझे रानीजी की काबलियत पर यक़ीन नहीं है क्या ?

–मुझे महलों की असलियत का पता है ।

–क्या मतलब ?

–तुम्हारी रानीजी, महलों में पलते–पनपते धुँए की गहरी लकीर के पीछे क्या छिपा होता है, नहीं जानतीं ।

–क्या होता है उस लकीर के पीछे ?

–एक गहरा सन्नाटा, एक जानलेवा ख़ामोशी और एक ज़ालिम गुमनामी ।

–तू कैसे, फूटे बोल, बोल रहा है, गैंदा ! आधी रात को तो सही बोला कर । तेरी बातें सुनकर मुझे तो बड़ा डर लगने लगा है ।

–मैं भी यह सब डरते–डरते ही कह रहा हूँ ।

–तेरे यह सब कहने का कोई कारण तो होगा !

–हज़ार मुँह, हज़ार बातें होती हैं, केसर ! बात के पैदा होने से उसके आँधी बनने का सफ़र चंद लम्हों में तय हो जाता है ।

–मैं समझी नहीं ।

–तुम्हारी रानीजी आधी रियासत की मालिक है । क्या कल उनके दिमाग में पूरी रियासत पर राज करने की बात नहीं आ सकती ?

–कैसी ऊलजलूल बात कर रहा है। रानीजी को रियासत से नहीं महाराज से लगाव है । और ये तो महाराज की मेहरबानियाँ है रानीजी पर।

–केसर ! हुकूमत का नशा ज़्यादातर आदमी को गुनाह की राह पर ले जाता है, जहाँ से वह न पीछे मुड़ सकता है, न आगे। पीछे की राह ओझल हो जाती है और आगे सिर्फ़ अँधेरा होता है।

–गैंदा ! मैंने तुझे हज़ार बार कहा है, मुझे टेढ़ी बात समझ मे नहीं आती। मुझसे तो सीधी–सीधी बात किया कर।

–सीधी बात यह है कि महाराज ने पोथीखाना तुम्हारी रानीजी के नाम कर दिया।

–तो क्या हुआ ?

–पोथीखाने में आज तक कोई औरत नहीं गई । उसमें देश–दुर्लभ ग्रन्थों का संग्रह है।

–कल तक औरत को हीन समझने वाली दृष्टि बदली है तो यह शुभ संकेत है । हमारी रानीजी पढ़ी–लिखी हैं, विदुषी हैं। वह अगर पोथीखाना का सही उपयोग करें तो क्या हर्ज है।

–लेकिन लोगों के सीनों पर तो साँप लोट गये हैं।

–ऐसे सीनों को एक दिन साँप ही खा जाएँगे।

–लेकिन अगर साँप उनके सीनों से छिटक कर आस्तीन मे जा छिपे तो ?

–फिर ?

–चल इस फिर की बात फिर कभी करेंगे। अब मैं चलूँ।

भड़कती लौ अँधेरे के आने का संकेत होती है।

–कैसी अशुभ बात कर रहा है अपनी जली ज़बान से।

–मैं सच कहा रहा हूँ, केसर ! सारे हाकिम बदल दिये गये हैं। दीवान नया, कोतवाल नया, महलपाल नया, किलेदार नया, अर्ज़ीनवीस नया, ख़बरनवीस नया। इतना बड़ा फेरबदल किसी रियासत में एक साथ कभी नहीं हुआ।

–नये पाँव जमाने के लिए पुराने पाँवों के निशान मिटा दिये जाते हैं। इसमें कौनसी नई बात हो गई !

–पुराने पाँव मंजिल का पता देते हैं। नये पाँव मंजिल तक पहुँचने से पहले भटक सकते हैं, केसर !

–तुझे रानीजी की काबलियत पर यक़ीन नहीं है क्या ?

–मुझे महलों की असलियत का पता है।

–क्या मतलब ?

–तुम्हारी रानीजी, महलों में पलते–पनपते धुँए की गहरी लकीर के पीछे क्या छिपा होता है, नहीं जानतीं।

–क्या होता है उस लकीर के पीछे ?

–एक गहरा सन्नाटा, एक जानलेवा ख़ामोशी और एक ज़ालिम गुमनामी।

–तू कैसे, फूटे बोल, बोल रहा है, गैंदा ! आधी रात को तो सही बोला कर। तेरी बातें सुनकर मुझे तो बड़ा डर लगने लगा है।

–मैं भी यह सब डरते–डरते ही कह रहा हूँ।

–तेरे यह सब कहने का कोई कारण तो होगा !

–हज़ार मुँह, हज़ार बातें होती हैं, केसर ! बात के पैदा होने से उसके आँधी बनने का सफ़र चंद लम्हों में तय हो जाता है।

–मैं समझी नहीं।

–तुम्हारी रानीजी आधी रियासत की मालिक है। क्या कल उनके दिमाग मे पूरी रियासत पर राज करने की बात नही आ सकती ?

–कैसी ऊलजलूल बात कर रहा है। रानीजी को रियासत से नहीं महाराज से लगाव है। और ये तो महाराज की मेहरबानियाँ है रानीजी पर।

–केसर ! हुकूमत का नशा ज़्यादातर आदमी को गुनाह की राह पर ले जाता है, जहाँ से वह न पीछे मुड़ सकता है, न आगे। पीछे की राह ओझल हो जाती है और आगे सिर्फ़ अँधेरा होता है।

–गैंदा ! मैने तुझे हज़ार बार कहा है, मुझे टेढ़ी बात समझ में नहीं आती। मुझसे तो सीधी–सीधी बात किया कर।

–सीधी बात यह है कि महाराज ने पोथीखाना तुम्हारी रानीजी के नाम कर दिया।

–तो क्या हुआ ?

–पोथीखाने में आज तक कोई औरत नहीं गई। उसमें देश–दुर्लभ ग्रन्थों का संग्रह है।

–कल तक औरत को हीन समझने वाली दृष्टि बदली है तो यह शुभ संकेत है। हमारी रानीजी पढ़ी–लिखी हैं, विदुषी है। वह अगर पोथीखाना का सही उपयोग करें तो क्या हर्ज है।

–लेकिन लोगों के सीनों पर तो साँप लोट गये हैं।

–ऐसे सीनों को एक दिन साँप ही खा जाएँगे।

–लेकिन अगर साँप उनके सीनों से छिटक कर आस्तीन मे जा छिपे तो ?

–फिर ?

–चल इस फिर की बात फिर कभी करेंगे। अब मैं चलूँ।

–हाँ, अब तू जा। सुबह से काम करते–करते शरीर टूट चला है। आँखें बोझिल हो उठी हैं। आज तू जा।

–जैसी तेरी मर्ज़ी!



महाराज ने महल के दरवाज़े पर पहुँचते ही आवाज़ लगाई– क्या रानी साहिबा अन्दर विराजती हैं?

महाराज की आवाज सुनते ही रसकपूर भागी–भागी आई और एकदम दुहरी होते हुए बोली– कनीज़ से कोई गुनाह हो गया क्या?

–गुनाह की बात कहाँ से ले आईं, जानेमन! ये लो तुम्हारे नाम का चाँदी का सिक्का। आज ही नये सिक्के टकसाल से ढ़लकर बाज़ार में आये हैं। हम भी आपको नज़राना पेश करने के लिए आपके नाम का ही सिक्का उठा लाये। महाराज ने रसकपूर को सिक्का देते हुए कहा।

रसकपूर ने सिक्का माथे से लगाते हुए महाराज का हाथ चूम लिया। वो धीरे से बोली– मिट्टी को तो आसमान पहुँचते देखा था लेकिन ज़र्रे को आफ़ताब बनते आज देखा।

–अगर तुम आफ़ताब हो तो हम क्या हैं?

–मेरे ख़ुदा।

और महाराज फिर अचकचा कर रह गये।

रसकपूर उन्हें अन्दर ले जाती बोली– हुज़ूर कुछ परेशान से लग रहे हैं।

–नहीं रानी, ऐसी तो कोई बात नहीं।

–कोई बात तो है ही। लब ख़ामोश रहें तब भी परेशानी की शिकन बहुत कुछ बोल जाती है। क्या बात है, अन्नदाता!

रसकपूर ने महाराज की तलवार को एक ओर रखते हुए पूछा।

महाराज बैठते हुए बोले– शहर में अजीब सी घुटन समा गई है। लोग खुलकर कुछ कहते नहीं लेकिन उनके बोलने से लगता है कि उनकी साँसों में धुँआ है।

–ये आग कहाँ सुलग रही है, मालिक!

–हमें इसका तो पता नहीं लेकिन हर आदमी सहमा-सहमा सा लगता है। कोई दरबारी पहले की तरह बोलता तक नहीं। किसी में आँख मिलाकर बात करने का वो साहस नहीं रहा। वोहराजी और चाँदसिंह तो उखड़े-उखड़े थे ही, आज हमने मिश्रजी को प्रधानमंत्री का पद सौंप दिया तो दरबार में सन्नाटा छा गया।

रसकपूर ने खुशी के सागर में लहराते हुए कहा– तो अन्नदाता ने मिश्रजी को प्रधानमंत्री बना ही दिया।

–तुम्हीं ने तो कहा था उस दिन।

–लेकिन इतनी जल्दी, मालिक!

–तुम्हारे फ़ैसले के बाद फिर देर कैसी?

–आपकी ज़र्रानवाज़ी है, अन्नदाता!

महाराज ने अपना पगड़ीनुमा मुकुट रसकपूर के हाथों में देते हुए पूछा– ये चंदन कौन है, रानी!

रसकपूर के हाथों से पगड़ी गिरते-गिरते बची। वो एकदम घबरा गई। सूरज की तेज़ निगाह से खिले-खिले गुलाब मुरझा जाते हैं। चोरी पकड़े जाने पर बीवी अपने शौहर से आँख नहीं मिला पाती। वही कुछ हालत रसकपूर की वो एक नाम, महाराज के मुंह से, सुनकर हो गई। तब भी अपने को सम्हालते हुए, साहस बटोरकर रसकपूर ने कह ही डाला –मैं समझी नहीं, अन्नदाता!

–इसमें समझना क्या है, रानी! जब हम जनता से

–हाँ, अब तू जा । सुबह से काम करते–करते शरीर टूट चला है । आँखें बोझिल हो उठी हैं । आज तू जा ।

–जैसी तेरी मर्ज़ी !



महाराज ने महल के दरवाज़े पर पहुँचते ही आवाज़ लगाई– क्या रानी साहिबा अन्दर विराजती हैं ?

महाराज की आवाज सुनते ही रसकपूर भागी–भागी आई और एकदम दुहरी होते हुए बोली– कनीज़ से कोई गुनाह हो गया क्या ?

–गुनाह की बात कहाँ से ले आईं, जानेमन ! ये लो तुम्हारे नाम का चाँदी का सिक्का । आज ही नये सिक्के टकसाल से ढलकर बाज़ार में आये हैं । हम भी आपको नज़राना पेश करने के लिए आपके नाम का ही सिक्का उठा लाये । महाराज ने रसकपूर को सिक्का देते हुए कहा ।

रसकपूर ने सिक्का माथे से लगाते हुए महाराज का हाथ चूम लिया । वो धीरे से बोली– मिट्टी को तो आसमान पहुँचते देखा था लेकिन ज़र्रे को आफ़ताब बनते आज देखा ।

–अगर तुम आफ़ताब हो तो हम क्या हैं ?

–मेरे ख़ुदा ।

और महाराज फिर अचकचा कर रह गये ।

रसकपूर उन्हें अन्दर ले जाती बोली– हुज़ूर कुछ परेशान से लग रहे हैं ।

–नहीं रानी, ऐसी तो कोई बात नहीं ।

–कोई बात तो है ही । लब ख़ामोश रहें तब भी परेशानी की शिकन बहुत कुछ बोल जाती है । क्या बात है, अन्नदाता !

रसकपूर ने महाराज की तलवार को एक ओर रखते हुए पूछा।

महाराज बैठते हुए बोले– शहर मे अजीब सी घुटन समा गई है। लोग खुलकर कुछ कहते नहीं लेकिन उनके बोलने से लगता है कि उनकी साँसों मे धुँआ है।

–ये आग कहाँ सुलग रही है, मालिक !

–हमें इसका तो पता नहीं लेकिन हर आदमी सहमा–सहमा सा लगता है। कोई दरबारी पहले की तरह बोलता तक नहीं। किसी में आँख मिलाकर बात करने का वो साहस नहीं रहा। बोहराजी और चाँदसिंह तो उखड़े–उखड़े थे ही, आज हमने मिश्रजी को प्रधानमंत्री का पद सौंप दिया तो दरबार में सन्नाटा छा गया।

रसकपूर ने खुशी के सागर में लहराते हुए कहा– तो अन्नदाता ने मिश्रजी को प्रधानमंत्री बना ही दिया।

–तुम्हीं ने तो कहा था उस दिन।

–लेकिन इतनी जल्दी, मालिक !

–तुम्हारे फ़ैसले के बाद फिर देर कैसी ?

–आपकी ज़र्रानवाज़ी है, अन्नदाता !

महाराज ने अपना पगड़ीनुमा मुकुट रसकपूर के हाथों मे देते हुए पूछा– ये चंदन कौन है, रानी !

रसकपूर के हाथो से पगड़ी गिरते–गिरते बची। वो एकदम घबरा गई। सूरज की तेज़ निगाह से खिले–खिले गुलाब मुरझा जाते है। चोरी पकडे जाने पर बीवी अपने शौहर से आँख नहीं मिला पाती। वही कुछ हालत रसकपूर की वो एक नाम, महाराज के मुंह से, सुनकर हो गई। तब भी अपने को सम्हालते हुए, साहस बटोरकर रसकपूर ने कह ही डाला –मै समझी नहीं, अन्नदाता !

–इसमें समझना क्या है, रानी ! जब हम जनता से

मिल रहे थे तो एक अजीब से नौजवान से मुलाकात हो गई। उसकी आँखों में आग थी लेकिन चेहरे पर पीलापन था। उसकी दाढ़ी के नीचे कोई बहुत पुराना दर्द दफ़न था। वह बोला– हुस्न को तिजोरी में बंद कर लेने पर भी उसकी रोशनी मद्धम होकर सही रहती तो है। पूरी रियासत में आग लग रहीं है और आप चाँद को सिरहाने रखे आराम फ़रमा रहे हैं। जिस दिन अमावस आएगी, हाथ कितने ही मज़बूत क्यों न हों, चाँद उनसे फिसल ही जाएगा। तब घनघोर अँधेरी रात में आप अपनी सूरत तक नहीं पहचान पायेंगे।

–इतना कुछ कह गया वो अजनबी और आप ख़ामोश रहे ? रसकपूर ने धड़कते दिल से पूछा।

महाराज ने रसकपूर की ओर देखते हुए कहा– न जाने क्यों, रानी, हमें उसका बोलना अखरा नहीं। वो शायद तुम्हारे और हमारे दोनों के ख़िलाफ़ बोल रहा था लेकिन हमें लगा कि शायद वो हमसे और तुमसे, गोया दोनों से बेहद प्यार करता है। हमें लगा कि शायद वो हमें आगाह करने के लिए इतना कड़वा बोल रहा है। हम उसके बारे में कुछ और जानकारी इकट्ठी करते कि उसी बीच वह भीड़ का हिस्सा बन गया लेकिन हमने मिश्रजी से उसके बारे में मालूमात करने के लिए कह दिया है।

–आपकी प्रजा है। आपके लिए तो हज़ारों सिर कट गिरने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। हो सकता है, वो नौजवान उन्हीं में से एक हो। रसकपूर ने छत की ओर देखते हुए कहा।

–लेकिन तुम खड़ी क्यों हो ? बैठ जाओ।

रसकपूर चुपचाप महाराज के पास बैठ गई।

फिर महाराज ने उसकी नाक दबाते हुए कहा– छोड़ो उस नौजवान का किस्सा। हमने तो यों ही पूछ लिया था क्योंकि वो जाते–जाते कह गया था कि रसकपूर जैसे चाँद शताब्दियों में पैदा होते हैं लेकिन उसे अपने दामन में समेटने के लिए आदमी

को आकाश बनना पड़ता है । हमने सोचा, शायद तुम उसे पहचानती हो क्योंकि इतनी सटीक बात कोई अनजान नहीं कह सकता ।

अपनी अकुलाहट को अपने शब्दों से थामे रसकपूर बोली– हो सकता है, हो सकता है अन्नदाता ! दरबार के दिन उसने मुझे देखा हो ।

–हमने भी यही सोचा था कि तुम्हें देखकर वो तुम्हारे हुस्न का दीवाना बन बैठा है और अपने होशोहवास खो बैठा है ।

–कैसी बाते कर रहे हैं, मेरे सरताज !

–अच्छा, अब आप बात ही करती रहेंगी या कुछ और भी करेंगी ?

–मालिक जो हुक्म दे ।

–हम तैयार होकर आते हैं । थके दिल, दिमाग और जिस्म के सकून के लिए आप जो बन्दोबस्त करें, हम आप पर छोड़ते हैं ।

–अन्नदाता ! आप तैयार हों, कनीज़ सारे इन्तज़ाम अभी करती है ।

महाराज के जाने पर रसकपूर अपना सिर पकड़ कर ज़मीन पर बैठ गई । चंदन की चर्चा ने उसे परेशान कर दिया । वो सोचने लगी– क्यों आया था वो महाराज से मिलने ? क्यों वो इतनी सारी बात कर गया ? क्यों वो महाराज से उसका ज़िक्र कर बैठा ? उसे मिलना था तो उससे मिलता । क्यों वो उसकी हरी–भरी ज़िन्दगी मे आग लगाने यहाँ तक आ पहुँचा ?

वो और भी कुछ·सोचती कि केसर ने सामने आते हुए कहा– महाराज की बातें मैंने सुनली हैं लेकिन आपने अभी तक कोई हुक्म नहीं फ़रमाया ।

अचकचाकर उठते हुए रसकपूर बोली– बस, मैं तुझे

आवाज़ देने ही वाली थी । अब मेरी बात ध्यान से सुन । शाम को महफ़िल सजनी है । महाराज बहुत थक गये हैं इसलिए महकती कलियाँ ही अपनी ख़ुशबू लुटायें ।

पारो बेग़म को कह दूँ ।

–नहीं, दूसरा इंतज़ाम करो ।

–हो जायेगा, रानी साहिबा !

–दूसरी बात । मिश्रजी को कहलवाओ कि वो महाराज के सोजाने के बाद हमसें मिलें ।

–जी ।

–तीसरी बात । वो तेरा हलकारा कहाँ है ?

हलकारे की बात सुन केसर चौंक पड़ी । वो अटकते हुए बोली– कोई भूल हो गई क्या, रानीजी !

–भूल नहीं, ये बता, वो आदमी तो तेरे भरोसे का है ना ?

–बिल्कुल, मालकिन !

–मुझे एक ऐसे ही भरोसे के आदमी की ज़रूरत है । तुम उसे कहना कि मुझसे मिले ।

–जी, बहुत अच्छा ।

–अब तू जा, और देखना, किसी काम में कोई कसर न रह जाए ।

–नहीं रहेगी, रानी साहिबा ! आप निश्चिन्त रहें ।



महफ़िल से उठते–उठते महाराज अपने क़दमों पर खड़े रहने लायक नहीं रहे थे । प्याले की उबलती और ज़मीन पर उछलती आग ने उनके होश हवन कर दिये थे । वे रसकपूर के

कंधों पर झूलते हुए अपने पलंग तक पहुँचे। अभी रसकपूर उन्हें लिटाकर, उनकी जूतियाँ उतार ही रही थी कि केसर ने हलकारे के आने की खबर दी।

रसकपूर बाहर आई तो अँधेरे मे खड़ा हलकारा झुककर दोहरा होगया।

रसकपूर ने पूछा– क्या नाम है तुम्हारा ?

–जी, गैंदालाल, गैंदा, रानी साहिबा !

–भरोसा तो नहीं तोड़ोगे ?

–उससे पहले अपने को तोड़ दूँगा, मालकिन !

–तुम नूरी बेग़म के कोठे, काँच महल, जाकर बेग़म से कहना कि हमने उन्हें और चंदन को कल रात इसी वक्त याद फ़रमाया है।

–मै दोनों को साथ लेकर हाज़िर हो जाऊँगा, मालकिन !

–अब तुम जा सकते हो।

–जो हुक्म, रानी साहिबा।

रसकपूर ने तनिक मुस्कराते हुए कहा– और हाँ, केसर, तुम भी चली जाओ।

और केसर सिर झुकाये चली गई।

तभी दबे पाँव आकर मिश्रजी ने रानी को आदाब पेश किया और धीरे से बोले– कैसे याद किया, रानी साहिबा !

रसकपूर ने उसी तरह, दबी आवाज़ में, कहा– हम आपके लिए रानी साहिबा नहीं हैं।

–कैसी बाते कर रही हैं, हुज़ूर ! आप पूरी रियासत की रानी साहिबा हैं और अपनी रियासत की तो मालकिन हैं।

–वो तो सब ठीक है। लेकिन बच्चे, बाप के लिए बच्चे

आवाज़ देने ही वाली थी । अब मेरी बात ध्यान से सुन । शाम को महफ़िल सजनी है । महाराज बहुत थक गये हैं इसलिए महकती कलियाँ ही अपनी ख़ुशबू लुटायें ।

पारो बेग़म को कह दूँ ।

–नहीं, दूसरा इंतज़ाम करो ।

–हो जायेगा, रानी साहिबा !

–दूसरी बात । मिश्रजी को कहलवाओ कि वो महाराज के सोजाने के बाद हमसें मिलें ।

–जी ।

–तीसरी बात । वो तेरा हलकारा कहाँ है ?

हलकारे की बात सुन केसर चौंक पड़ी । वो अटकते हुए बोली– कोई भूल हो गई क्या, रानीजी !

–भूल नहीं, ये बता, वो आदमी तो तेरे भरोसे का है ना ?

–बिल्कुल, मालकिन !

–मुझे एक ऐसे ही भरोसे के आदमी की ज़रुरत है । तुम उसे कहना कि मुझसे मिले ।

–जी, बहुत अच्छा ।

–अब तू जा, और देखना, किसी काम में कोई कसर न रह जाए ।

–नहीं रहेगी, रानी साहिबा ! आप निश्चिन्त रहें ।



महफ़िल से उठते–उठते महाराज अपने क़दमों पर खड़े रहने लायक नहीं रहे थे । प्याले की उबलती और ज़मीन पर उछलती आग ने उनके होश हवन कर दिये थे । वे रसकपूर के

कंधो पर झूलते हुए अपने पलंग तक पहुँचे। अभी रसकपूर उन्हें लिटाकर, उनकी जूतियाँ उतार ही रही थी कि केसर ने हलकारे के आने की खबर दी।

रसकपूर बाहर आई तो अँधेरे में खड़ा हलकारा झुककर दोहरा होगया।

रसकपूर ने पूछा– क्या नाम है तुम्हारा ?

–जी, गैंदालाल, गैंदा,रानी साहिबा !

–भरोसा तो नहीं तोड़ोगे ?

–उससे पहले अपने को तोड़ दूँगा, मालकिन !

–तुम नूरी बेग़म के कोठे, काँच महल, जाकर बेग़म से कहना कि हमने उन्हें और चंदन को कल रात इसी वक्त याद फ़रमाया है।

–मै दोनों को साथ लेकर हाज़िर हो जाऊँगा, मालकिन !

–अब तुम जा सकते हो।

–जो हुक्म, रानी साहिबा।

रसकपूर ने तनिक मुस्कराते हुए कहा– और हाँ, केसर, तुम भी चली जाओ।

और केसर सिर झुकाये चली गई।

तभी दबे पाँव आकर मिश्रजी ने रानी को आदाब पेश किया और धीरे से बोले– कैसे याद किया, रानी साहिबा !

रसकपूर ने उसी तरह, दबी आवाज़ में, कहा– हम आपके लिए रानी साहिबा नहीं हैं।

–कैसी बाते कर रही है, हुज़ूर ! आप पूरी रियासत की रानी साहिबा है और अपनी रियासत की तो मालकिन है।

–वो तो सब ठीक है। लेकिन बच्चे, बाप के लिए बच्चे

ही रहते हैं।

–जी––जी, मैं समझा नहीं।

–समझदार जब नासमझ जैसा आचरण करे तो दुनिया में उसे कोई नहीं समझा सकता।

–जी, मैं फिर नहीं समझा।

–ठीक है, जितना मैं कह रही हूँ उतना आप समझलें।

–फ़रमायें।

–महल में और बाहर भी गुप्त षड़यंत्र रचे जारहे हैं। आज महाराज भी काफ़ी परेशान दिखाई दिये। आप ऐसे लोगों पर निगाह रखें और पानी सर से गुज़रता देखें तो वो सर––

–मैं समझ गया, रानी साहिबा ! सब कुछ समझ गया। अब आपको कोई शिकायत नहीं होगी।

मिश्रजी जब रुख़सत हुए तो वो नहीं देख पाये कि अँधेरे में छिपी दो चमकती आँखें उनकी पूरी गतिविधि पर निगाह रखे हुए थीं।

चंदन और नूरी जब हलकारे के साथ महलों में आये उस वक़्त घड़ियाल बारह घंटे बजाकर आधीरात गुज़र जाने का संदेश दे चुका था। महाराज अंदर सो रहे थे। रसकपूर बेचैन सी बाहर टहल रही थी। अचानक नूरी बेग़म को सामने देख वो भागती हुई उसके कंधे से जा लगी जैसे किसी चुम्बक से खिंचा कोई लोहा उससे जा चिपका हो। जब नूरी और रसकपूर के कंधे पूरी तरह भीग गये तो दोनों भारी मन से अलग हुए। अपने को सम्हालते हुए रसकपूर ने पूछा– तुम्हें मेरी याद कभी नहीं आई, अम्मीजान !

और इस प्रश्न के उत्तर में नूरी ने रसकपूर को खींच कर फिर गले लगा लिया। फिर बहुत देर तक दोनों अपनी आँखों को नहलाती रहीं।

दिल में उठे ज्वार के थमने के बाद नूरी ने पूछा– कैसी हो, बेटी !

रसकपूर ने प्रश्न के उत्तर में प्रश्न किया– तुम कैसी हो, माँ !

–चिराग़े–सहर हूँ बुझा चाहती हूँ।

–कैसी बातें कर रही हो, अम्मी ! नूरी के ओठों पर अपना हाथ रखते हुए रसकपूर ने कहा– आज तुम्हारी बेटी के इशारे पर हुकूमत चलती है। आज तुम्हारे सरताज इस रियासत के वज़ीरे–आज़म है।

–मै जानती हूँ, बेटी ! खुदा तुझे सलामत रखे लेकिन ये चंदन कह रहा था कि– नूरी बात पूरी करती इससे पहले रसकपूर की डबडबाई आँखें अँधेरे में खड़े चंदन पर जा टिकीं। वह धीरे–धीरे क़दम बढ़ाती उसके पास जा पहुँची।

चंदन सहमा सा एक क़दम पीछे हट गया तो रसकपूर बोली– चंदन ! यही था वो प्यार, वो मोहब्बत ! मुझसे एक बार भी मिलने की कोशिश नहीं की।

और पता नहीं क्या हुआ, चंदन फफक कर रो उठा। रसकपूर के गाल भी गीले होगये। धीरे से चंदन के आँसू पोंछकर रसकपूर ने अपने आँसू पोंछ लिये।

चंदन अटकता सा बोला– कल दरबार में तुम्हें ही देखने आया था। वैसे राज दरबार के पहले दिन भी आया था लेकिन बहुत भीड़ के कारण तुम तक नहीं पहुँच सका। कल महाराज जनता की बाते सुन रहे थे सो मै भी उन तक पहुँच गया। पता नहीं, तुम्हारे ख़यालो में खोया उनसे क्या–क्या कह गया।

–लेकिन तुम्हारी ये दाढ़ी ? ये बुझा–बुझा सा चेहरा ? तुम्हें ये क्या होगया, चंदन !

–ये तुम पूछ रही हो, तुम पूछ रही हो ये ? अपने हाथो ज़हर पिलाकर तबियत का हाल पूछना इस दुनिया का पुराना

दस्तूर है।

–ऐसा नहीं है, चंदन ! अब तुम्हें मैं क्या बताऊँ, तुम्हें खोकर मैं, अकेले में, कितना रोई हूँ, कितनी तड़पी हूँ।

–अपने हाथों से अपना मुक़द्दर लिखने का दावा करने वाले मुक़द्दर को कोसते अच्छे नहीं लगते।

–यह भी ठीक है।

–भी नहीं, ये ही ठीक है, रसकपूर !

रसकपूर कुछ और कहती कि हलकारे ने धीरे से आकर कहा– बहुत देर होगई है, रानी साहिबा ! इन लोगों को अब चले ही जाना चाहिए। ये महल सोते हुए भी जागते रहते हैं।

रसकपूर ने इशारा समझते हुए कहा– ठीक है, चंदन ! मैं गैंदालाल को भेजकर फ़ुर्सत में तुम्हें बुलवा लूँगी। तुमसे ढ़ेर सारी बातें करनी हैं।

इतना कह रसकपूर अंदर गई और दोनों के लिए हीरे जड़े आभूषण लेकर आई। चंदन और नूरी को उन्हें देते हुए रसकपूर बोली– इन्हें मेरी निशानी समझकर रखलो। पता नहीं, फिर कब मिलना हो ?

भरी आँख नूरी बोली– ऐसी बात नहीं करते, बेटी ! तुम हज़ारों साल यों ही मुसकराती रहो।

रसकपूर ने झुककर आदाब किया तो नूरी, चंदन और गैंदा तीनों पलट लिये।

अँधेरे से एक साया भी निकल वहीं कहीं ओझल होगया।



आज की रात, महारानी भटियाणी के महल का मौसम भीगा–भीगा सा था। बोहराजी, चाँदसिंह और मेघसिंह के साथ काफ़ी रावराजे इकट्ठे मिलकर बैठे हुए थे। महारानी अपनी पुरानी जगह, झीने पर्दे के पीछे बैठी हुई थीं। तभी चाँदसिंह ने कहा– हम सबके घरों तक आग की लपटे आरही है और बोहराजी, आप अब भी वक्त आने का इंतज़ार करने के लिए कह रहे हैं।

महारानी ने अंदर से कहा– बोहराजी ! आप कौनसे वक्त का इंतज़ार करना चाहते है ?

बोहराजी बोले– महारानी साहिबा ! मै आपका, इस राजघराने का नमकख़्वार हूँ। आप मुझपर भरोसा रखें। सब ठीक हो जाएगा।

–लेकिन कब ठीक हो जाएगा ? इस बार मेघसिंह ने पूछा और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये वे बोले– बाईजी ने पंडित को प्रधानमंत्री बनवा दिया। उस कोठेवाली को और अपने पुराने आशिक को बुलाकर कोई नया षड़यंत्र रच रही है। आप वक्त का इतज़ार करने की कह रहे हैं। आज सिर्फ संदेह के आधार पर पाँच लोगो को जान से हाथ धोना पड़ा। फिर कौनसा वक्त आयेगा, बोहराजी !

–मुझे पता है, मेघसिंह ! वो पंडित तो अपनी मौत ख़ुद ही मर जाएगा। उस बिचारे में इतना दम कहाँ ? तुम ख़ुद देख लेना। रहा सवाल इस बाईजी का, उसे ठिकाने लगाने के लिए वक़्त का इंतज़ार करना ही पड़ेगा। बोहराजी कहीं दूर भविष्य को देखते हुए बोले।

–बोहराजी ! मुझसे तो अब ये सब सहन नहीं होता। कहीं ऐसा न हो कि आप वक़्त का इंतज़ार ही करते रह जायें और मै अभागिन इस दुनिया से कूच कर जाऊँ। महारानी ने आँखों की किनोरें पौंछते हुए कहा।

–महारानी को ये शोभा नहीं देता। आप तो वीरता और धैर्य की प्रतिमूर्ति हैं, महारानी ! आपको इतनी बेचैनी नहीं सुहाती। पूरा दरबार आपके एक इशारे पर रियासत में आग लगा सकता है। आप ऐसी हारी–हारी बात करें, ये ठीक नहीं। बोहराजी ने आँखें झुकाते हुए कहा।

–मैं सब समझती हूँ, बोहराजी ! लेकिन दिल नहीं मानता , आँसू रुकते नहीं। मैंने कभी नहीं सोचा था कि किस्मत मुझे कभी इस मोड़ पर भी ले आएगी। महारानी ने फिर आँखें पौंछते हुए कहा।

इस बार चाँदसिंह खड़े होते हुए बोले–बोहराजी ! मैं अपनी महारानी की, अपनी माँ की, गीली आँखें नहीं देख सकता। नहीं देख सकता मैं यह सब कुछ। मैं उस बाईजी का किस्सा ही तमाम किये देता हूँ।

बोहराजी ने दूनी ठाकुर का हाथ पकड़ उन्हें बिठाते हुए कहा– ठाकुर ! ये अपनी रियासत है। अपने महाराज हैं। धीरज से काम लो। और फिर किसी बाईजी का ख़ून अपनी तलवार को पिलाना अपनी आन, बान और शान के ख़िलाफ़ है। युद्ध के मैदान में दुश्मनों का लहू चाटने वाली तलवार की इस तरह बेइज़्ज़ती नहीं की जा सकती।

–फिर क्या करें ? कुछ तो कहें। इस बार मेघसिंह बोले।

–मैं फिर कह रहा हूँ, वक़्त का इंतज़ार करें।

–लेकिन कब तक ?

चाँदसिंह के इस सवाल का जवाब देते हुए बोहराजी ने कहा– बस, कुछ दिन और।

–कुछ दिन ? आश्चर्य से बोहराजी की ओर देखते हुए महारानी ने पूछा।

–हाँ, महारानी ! मैं उस दिन के इंतज़ार में हूँ जब

किसी भी काम से महाराज कुछ दिनों के लिए राजधानी से बाहर पधारे। बस, फिर देखना आप।

बोहराजी के चुप होते ही चाँदसिंह बोले– फिर क्या होगा, बोहराजी!

–ठाकुर! ये तो वक़्त आने पर बताऊँगा, लेकिन आज मैं इतना ज़रूर कह सकता हूँ कि फिर ये आफ़त हमेशा–हमेशा के लिए दूर हो जाएगी। बोहराजी ने शून्य में देखते हुए कहा।

–उस कोठे वाली और इन बाईजी के उस आशिक के बारे में आपने कुछ सोचा है? मेघसिंह ने सहज प्रश्न पूछा।

–हाँ, वे बहुत काम के लोग हैं। बाईजी को स्वर्ग पहुँचाने के काम में सहायता करेंगे।

बोहराजी के इस उत्तर के बाद सब लोग महारानी को प्रणाम् कर, धीरे–धीरे, वहाँ से चले गये।



आज दरबार में महाराज के विराजने के बाद भी प्रधानमंत्री के आसन का खाली रहना सबको आश्चर्य चकित कर रहा था। महाराज भी उचटती निगाहों से कई बार उस ओर देख चुके थे। पूरा दरबार ख़ामोश बैठा था।

थोड़ी प्रतीक्षा करने के बाद बोहराजी उठे और बोले– अन्नदाता! मिश्रजी की ग़ैर मौजूदगी में यदि आप आज्ञा दें तो दरबार की कार्यवाही शुरू की जाए।

महाराज बिना कुछ सोचे–समझे कह बैठे– हाँ, हाँ, शुरू करें, बोहराजी!

बोहराजी ने अपने धीर–गंभीर स्वर में कहना शुरू किया– अन्नदाता! वह परमपिता परमेश्वर आपको

सहस्रवर्षजीवी करे। रियासत में कितने ही अन्याय और ज़ुल्म हों लेकिन आपका वफ़ादार आदमी मरते दम तक आपके लिए वफ़ादार रहेगा।

–हम कुछ समझे नहीं, बोहराजी ! जो कुछ कहना हो साफ़–साफ़ और ख़ुलासा कहें जिससे हम वाज़िब हुक्म दे सकें। महाराज ने नीची निगाह किये खड़े हुए बोहराजी की ओर देखते हुए कहा।

–अन्नदाता ! मेरी एक अर्ज़ है। आप पूरी बात शान्ति से सुनलें क्योंकि आज जो कुछ भी मैं निवेदन करूँगा वह फ़ैसले के लिए नहीं सिर्फ़ जानकारी के लिए करूँगा।

महाराज ने सहज भाव से कहा– फ़रमाइये। हम सुन रहे हैं।

बोहराजी अपने चिरपरिचित लहज़े में बोले– मालिक ! पिछले कुछ महीनों में अन्नदाता के वफ़ादार आदमी अहम् ओहदों से हटा दिये गये। यह बात इसलिए समझ में आती है कि हुज़ूर ने जिसके हाथों काम चलाने की बागडोर सौंपी है उसने अपनी सहूलियत के लिए ऐसा किया हो।

–आप दुतरफ़ी बात कर रहे हैं, बोहराजी ! महाराज ने टोकते हुए कहा।

–अन्नदाता ! ये जान आपकी ही है, इससे ज़्यादा मैं, ख़िदमत में, और कुछ तो पेश कर सकता नहीं लेकिन मैं पहले ही अर्ज़ कर चुका हूँ कि हुज़ूर पहले पूरी बात तफ़सील और सिलसिले से सुनलें, उसके बाद नाचीज़ का सर क़लम करवादें। ज़ुबान से उफ़ तक नहीं निकलेगी। बोहराजी ने उसी अदब से कहा।

महाराज गंभीर हो गये। पोथीखाने जाने के चक्कर में आज रसकपूर दरबार में आई नहीं थी और मिश्रजी गायब थे। महाराज समझ गये कि आज बाज़ी बोहराजी के हाथ है।

इसलिए उन्होंने तय कर लिया कि वे सिर्फ़ उन्हे सुनेंगे, कोई फ़ैसला नहीं करेंगे। महाराज ने धीरे से कहा– ठीक है, बोहराजी ! आप अपनी बात कहना जारी रक्खें।

–बहुत, बहुत मेहरबानी, मालिक ! मैं अर्ज़ कर रहा था कि सारे कारिन्दे बदल दिये गये। सैकड़ों को नौकरी से निकाल दिया गया। आज वे सारे ईमानदार और वफ़ादार आदमी एक वक़्त की रोटी के लिए तरस रहे हैं, जिन्होंने अपनी जवानी अन्नदाता के लिए दिन–रात काम करते होम करदी, वे इस बुढ़ापे में अपने बच्चों को दूध पिलाने तक के लिए मोहताज़ हो गये हैं। उन घरों में आँसू और अँधेरा पड़ाव डालकर बैठ गये हैं।

बोहराजी ने महाराज की ओर देखते हुए कहा– जिन लोगों ने अन्नदाता के लिए युद्ध के मैदान मे अपनी जानें कुर्बान करदीं और जिनके बच्चों को मुआवज़े की शक़्ल में नौकरी दी गई उन्हें बर्खास्त कर दिया गया जिससे अन्नदाता का कोई वफ़ादार आदमी रियासत में किसी ओहदे पर काम न कर सके। उनकी जगह कामचोर और रिश्वतखोर अहलकारों को लगा दिया गया जो किसी खास आदमी की जी हुजूरी करते रहें। आज चारों ओर ऐसे भागीरथों की भरमार हो गई है जो बिना शर्माए डकैती डाल रहे हैं, जिन्हें देखकर शर्म तक शरमा रही है और इंसानियत सौ–सौ आँसू रो रही है।

–ये –ये सब क्या हमारी रियासत मे हो रहा है ? महाराज ने पहलू बदलते हुए पूछा।

–जी,जहाँपनाह ! मै हुजूर की रियासत की ही चर्चा कर रहा हूँ। ये सब भी काबिले–बर्दाश्त हो सकता था, अन्नदाता ! लेकिन अब जो मुहिम शुरु हुई है उसमें वफ़ादारो को गिन–गिनकर फॉसी पर लटकाया जा रहा है और वो भी आपके हुक्म से।

महाराज एकदम खड़े हो गये। सारा दरबार खड़ा हो

गया। महाराज चीख़ते से बोले– बोहराजी ! आप हद से गुज़रते जा रहे हैं। हम आपका अपने बाप की तरह लिहाज़ करते हैं लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि हम आपकी हर ऊलजलूल बात भी बर्दाश्त कर लें।

बोहराजी ने सिर झुकाते हुए कहा– अन्नदाता ! अपनी मौत तो मैं आपसे पहले ही माँग चुका हूँ और मैंने यह भी अर्ज़ कर दिया है कि जो कुछ मैं निवेदन कर रहा हूँ वह हुज़ूर की सिर्फ़ जानकारी के लिए है, फ़ैसले के लिए नहीं।

–लेकिन हम बेकुसूरों को फाँसी कैसे दे सकते हैं, बोहराजी !

–आप विराजें, अन्नदाता !

–नहीं ! पहले आप जवाब दें। महाराज ने आँखें तरेरते हुए कहा।

–अन्नदाता ! बोहराजी सिर झुकाये हुए बोले– आप सही फ़रमा रहे हैं। सारी रियासत ये जानती है कि मालिक ऐसी बेइंसाफ़ी नहीं कर सकते लेकिन जो मरे हैं उन्हें फाँसी आपके नाम से ही दी गई है चाहे हुज़ूर ने ऐसा कोई हुक्म न दिया हो।

–क्या यह सच है, बोहराजी !

–मेरे ख़ून में ख़ानदानी हरारत बाकी है, अन्नदाता ! आपसे झूँठ बोलने से पहले मैं ख़ुद को ख़त्म कर दूँगा। बोहराजी ने महाराज की आँखों में झाँकते हुए कहा।

इससे आगे महाराज कुछ नहीं सुन सके। वे तेज़ क़दमों से चलते हुए, दरबार से बाहर, निकल गये।

♠

रसकपूर जब केसर के साथ पोथीखाना पहुँची तो वहाँ के सारे अहलकार अदब से खड़े हो गये। पोथीखाना में आनेवाली वह प्रथम महिला थी इसलिए लोगों की आँखों में आश्चर्य मिश्रित आनन्द था। रसकपूर यों ही टहलती हुई आलमारियों को देखने लगी। एक-दो हस्तलिखित पुरानी पाण्डुलिपियाँ भी उसने देखीं। जयपुर के प्रतापी महाराजाओं के चित्रों के सामने भी वो बहुत देर तक खड़ी रही। उसके पीछे केसर थी और हाथ बाँधे पोथीखाने का अधिकारी।

रसकपूर ने एक जीर्ण-शीर्ण पाण्डुलिपि को देखते हुए कहा- सुनिये।

और वहाँ का प्रभारी सिर झुकाये सामने आ खड़ा हुआ।

रसकपूर ने उस पाण्डुलिपि की ओर इशारा करते हुए कहा- देखिये। ऐसी महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित पाण्डुलिपियों की अगर सुरक्षा नहीं होगी तो वे नष्ट हो जाएँगी। ज्ञान के ऐसे अक्षय कोष को, रत्नों की भाँति ही, सम्हालकर रखना पड़ता है।

-जी, जैसा हुज़ूर ने फ़रमाया, वैसा इंतजाम हो जाएगा।

रसकपूर आगे बढ़ी और एक पाण्डुलिपि लेकर बैठ गई। उसने केसर से कहा- महाराज दरबार में गये हैं। तू जा। जब महाराज दरबार से उठे तो मुझे खबर कर देना। प्रभारी की ओर मुड़ते हुए रसकपूर ने कहा- आप भी अपना काम करें। मै यहीं बैठकर यह पाण्डुलिपि पढ़ती हूँ।

प्रभारी ने सिर झुकाते हुए कहा- रानी साहिबा ! आप तशरीफ़ ले जाएं। मै इसे महलों में भिजवाए देता हूँ।

-जी नहीं ! रसकपूर ने गंभीर होते हुए कहा- इस बात का आप खास एतिहात बरतें कि यहाँ से कोई पाण्डुलिपि

बाहर न जाए । एक हाथ से दूसरे हाथ तक पहुँचने में भी यह धरोहर नष्ट हो सकती है ।

–जी, जी,बिलकुल ! जैसा आपने फ़रमाया है, वैसा ही होगा । वो प्रभारी अचरज में था कि पाण्डुलिपि के प्रति कितनी निष्ठा है इस रानी की ।

रसकपूर अकेले बैठकर पढ़ने लगी । बहुत दिनों बाद उसने पढ़ने के लिए वक़्त निकाला था । पुस्तकें आदमी को अकेला नहीं होने देतीं । उदास क्षणों के बोझ से उबारने के लिए पुस्तकों से सशक्त और कोई माध्यम नहीं हो सकता । पुस्तकें एकाग्रता से समाधि तक का यात्राबोध हैं । पुस्तकें आत्म-विस्मरण की सीमा हैं»। रसकपूर इन तथ्यों से भली-भाँति परिचित थी । नृत्य-संगीत के साथ उसकी अध्ययन के प्रति भी गहरी रुचि थी । आज वह स्वच्छंद होकर पुस्तक पढ़ने बैठी तो सब कुछ भूल गई ।

पोथीखाना के सारे परिचारक, मूर्ति बनी अध्ययनरत रसकपूर को, बड़े विस्मय से देख रहे थे । इतनी तल्लीनता से किसी को पढ़ते हुए उन्होंने आज पहलीबार देखा था । आज पहली बार उन्हें पोथीखाना की सार्थकता का अनुभव हुआ था । वे आज समझे थे कि ज्ञानवान के लिए सर्वश्रेष्ठ सम्मोहन पुस्तकें हैं । वे आज यह भी समझ गये थे कि ज्ञानार्जन का प्रथम सोपान पुस्तकों के प्रति आकर्षण है ।

रसकपूर अध्ययन में डूबी हुई थी कि सामने गैंदालाल ने आकर झुकते हुए कहा– रानी साहिबा ! दास का प्रणाम कबूल फ़रमायें ।

गैंदालाल को अकस्मात् सामने देख रसकपूर आशंका से भर उठी । गैंदालाल दिन के उजाले में कभी उसके सामने नहीं आया था और वह भी इस तरह सबके सामने उससे मिलना नहीं चाहती थी । वह यह जानती थी कि कभी–कभी अँधेरा भी राज़ खोलने के लिए गवाही दे देता है । उसे देख वह बोली–

कौन हो तुम ? यहाँ कैसे आये ? बोलो, क्या काम है ?

गैंदालाल ने धीरे से कहा– बड़ा अनर्थ हो गया है, रानी साहिबा ! दरबार ख़त्म हुए बहुत देर हो गई है। महाराज आमेर के महलों में चले गये हैं। प्रधान मंत्रीजी ने –– । ख़ैर, आप अपने महल में पहुँचे। मैं वहीं हाज़िर होता हूँ।

इतना कह, बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये, गैंदालाल झुका और चला गया। रसकपूर का साँस ऊपर का ऊपर और नीचे का नीचे रह गया। गैंदालाल की बातों ने खलबली सी मचादी उसके दिल और दिमाग़ में। प्रधानमंत्रीजी की बात वह अधूरी ही छोड़ गया था। वह उठी, बिना वहाँ के कर्मचारियों के प्रणाम् का जवाब दिये, भागती सी, अपने महल मे जा पहुँची।

उसके पीछे केसर भी पहुँच गई। केसर को देख रसकपूर को थोड़ी तसल्ली हुई। इतने में ही गैंदालाल सहमता सा, चारों ओर देखता हुआ, वहाँ आ पहुँचा।

रसकपूर घबराते हुई बोली– हाँ, गैंदालाल जल्दी बोल क्या बात है। मेरा दिल बहुत ज़ोरों से धड़क रहा है।

गैंदालाल बोलने को हुआ कि उसकी आँखें छलछला उठीं। यह देख केसर और रसकपूर दोनों के चेहरे पीले पड़ गये। केसर बोली– गैंदा, तेरी आँख में पानी ? अरे, बोल तो सही, क्या हो गया ?

गैंदालाल बोला– रानीजी ! मैं और केसर आपको जी–जान से चाहते हैं। मेरी आपसे एक ही विनती है कि आप तुरन्त इस राज की हद से बाहर चली जाएँ। दुश्मनों की चाले कामयाब होती दिखाई पड़ रही हैं।

–ये तू क्या कह रहा है, गैंदालाल ! ऐसा क्या हो गया एक ही रात में ? रसकपूर ने उसे घूरते हुए पूछा।

गैंदालाल बोला– अँधेरों ने हमेशा उजालो के ख़िलाफ़ साजिश की है और वे कामयाब भी हुए हैं। रानीजी, गज़ब हो

गया है । प्रधानमंत्री ने ज़हर खालिया है ।

–क्या ऽऽ ? अगर केसर न सम्हालती तो रसकपूर निश्चित रूप से ज़मीन पर गिर पड़ती । वो चीखी– क्यों ? क्यों खालिया ज़हर मिश्रजी ने ? बोल, गैंदालाल !

–आज दरबार में बोहराजी ने सीधे–सीधे उन पर ऐसे इल्ज़ाम लगाये कि मैं क्या बताऊँ ? वे दरबार में थे नहीं । उन्हें जोधपुर दरबार की मौत का समाचार मिल गया था, इसलिए वो अपनी रियासत का शोक व्यक्त करने के लिए कुछ प्रमुख दरबारियों को वहाँ भेजने के काम में उलझे हुए थे । उन्हें जैसे ही दरबार में हुई बातों की ख़बर मिली तो उनसे वह सब कुछ सहन नहीं हुआ । बहुत नर्म जान थे वो । ज़हर खाकर हमेशा के लिए सो गये ।

रसकपूर की आँखों से गंगा–जमुना बह निकलीं । बिना आँसुओं को पौंछे वो बोली– यह क्या हो गया ? क्या हो गया ये ?

फिर वो टूटती सी पलंग पर बैठ गई और सूनी आँखों से बहुत देर तक छत को देखती रही । आँखों का सैलाब जब कुछ कम हुआ तो गैंदालाल की तरफ़ देखती हुई रसकपूर बोली– और ऐसे में, तू मुझे रियासत छोड़ने को कह रहा है । मुझे मिश्रजी की मौत का बदला लेना है । मैं कहीं नहीं जाऊँगी ।

–नहीं, रानी साहिबा ! गैंदा ठीक कह रहा है । शातिरों में वो ताक़त होती है जो दिन के उजाले को भी स्याह कर डालती है । मैं और गैंदा भी आपके साथ चले चलेंगे । केसर ने अपनी आँखें पौंछते हुए कहा ।

–मैं जानती हूँ, केसर ! तेरा प्यार और गैंदालाल की वफ़ादारी मैं जानती हूँ लेकिन तुझे मेरे बारे में पता नहीं । अपनी ज़िन्दगी का मोह तो मैं उसी दिन छोड़ चुकी थी जिस दिन महल में आ गई थी लेकिन अन्याय के खिलाफ़ तो लड़ना ही

होगा न । और मैं लड़ूँगी । गैंदालाल, तू जा और महाराज की ख़बर ला ।

गैंदालाल ने सिर झुकाते हुए फिर कहा– रानी साहिबा ! आप ज़िद न करें और मेरी बात मानलें । दिये की काँपती लौ तूफ़ान के फ़ौलादी शिकंजे से कभी लोहा नहीं ले सकती ।

–फिर तो कोई राह रोशनी नहीं होती । हर घर में अँधेरा ही रहता । तूफ़ान के डर से दीपक जलना नहीं छोड़ सकता ।

अब तू जा और जैसा मैंने कहा है, महाराज की ख़बर लेकर आ ।

गैंदालाल फिर कुछ नहीं बोला । उसने सिर झुकाया और चला गया ।



रसकपूर ज़मीन पर लेटी तो लेटी ही रही । बार–बार अनजाने ही, अनायास, उसकी आँखें भर आतीं । आँसू गालों के किनारे पार कर धरती को भिगोते रहे ।

केसर ने बार–बार उठने का आग्रह किया लेकिन वो चाहकर भी नहीं उठ सकी । साँझ होते–होते प्रतिदिन जो वह श्रृंगार करती, अपनी तन–गंध को गंधमादन बनाती, महके फूलों को अपने खिले अंगों को छूने की छूट देती–वह आज सब भूल गई ।

केसर ने फिर कहा– रानीजी ! रात का पहला पहर बीतने को है । महाराज कभी भी आ सकते हैं । आपको इस हाल में देखकर वो क्या सोचेंगे ? हाथ–मुँह धोकर तैयार हो जाइये । आप कहे तो केसरजल से मैं आपको स्नान करादूँ ।

लेकिन रसकपूर ने जैसे कुछ सुना ही नहीं । इतने में ही गैंदालाल दौड़ते हुए आया और–महाराज महल में आने को हैं–

कहकर भाग गया।

अब रसकपूर के शरीर में थोड़ी हलचल हुई। वो उठने को ही थी कि महाराज सामने आगये। उनकी आँखों में उभरे लाल डोरे इस बात की गवाही दे रहे थे कि आज रसकपूर के अलावा किन्हीं और हाथों से वो पीकर आये थे।

रसकपूर को देख महाराज बोले– अपनी क्या हालत बना रखी है, रानी !

रसकपूर ने उठते हुए कहा– अन्नदाता ! आँखों को रोशनी देने वाला सूरज अगर रूठ आए तो कितनी ही बड़ी आँखें क्यों न हों बेनूर हो जाती हैं।

–हम समझे नहीं।

–आप आँखों से ओझल हो जाते हैं तो मेरी दुनिया में अँधेरा छा जाता है। मालिक ! मैं बिना आपके एक पल भी नहीं जीसकती। नहीं जीसकती, अन्नदाता !

महाराज ने रसकपूर को गले लगाते हुए कहा– रसकपूर ! क्या तुम्हें उम्मीद है कि हम तुम्हारे बिना रह सकते हैं। हम मर जाएँगे जिस दिन तुम निगाहें फेर लोगी।

रसकपूर महाराज के मुँह पर हाथ रख उनके कंधे पर फूट पड़ी।

कुछ देर बाद उसने महाराज को पलंग पर बिठाया। बैठते–बैठते महाराज बोले– आज फूलों ने और आभूषणों ने कोई बदतमीज़ी करदी क्या, जो आपने उन्हें अपने शरीर को छूने नहीं दिया। वैसे श्रृंगार को श्रृंगार की ज़रूरत नहीं होती। हमें तो महज़ उनपर तरस आगया था, इसलिए पूछ बैठे।

–नहीं, महाराज ! ऐसी कोई बात नहीं। वो तो प्रधानमंत्री ने ज़हर खालिया उस सोच में–––

–क्या ? महाराज चीखते हुए बोले–क्या मिश्रजी ने ?

–हाँ, महाराज ! वो दरबार में बोहराजी द्वारा लगाये गये झूँठे इल्ज़ामो को सहन नहीं कर सके।

–अरे, रानी ! तो वो मुझसे मिलते। मैने कौनसा उन वातों पर यक़ीन कर लिया था। वास्तव में ग़ज़व हो गया।

–अन्नदाता ! वफ़ादार आदमी जान देसकता है, गद्दारी नहीं कर सकता। और मिश्रजी ने वही किया।

–हम जानते है, रानी ! ये बहुत बुरा हुआ। वे आज दरवार में नहीं आये, नहीं तो ये नौबत ही नहीं आती। महाराज ने पलंग से उठकर टहलते हुए कहा।

रसकपूर ने धीरे से कहा– अन्नदाता ! जोधपुर महाराज के आकस्मिक स्वर्गवास की सूचना पाकर वे अपनी रियासत की ओर से शोक व्यक्त करने के लिए कुछ दरबारियो को वहाँ भेजने के काम में जुटे हुए थे।

–अरे, महाराज भीमसिंहजी भी चले गये ! बड़ा मनहूस रहा आज का दिन, रसकपूर ! हम दरवार से उद्विग्न होकर महल में आये। तुम्हें न पाकर, पारो को साथ लेकर, हम आमेर चले गये। हमारी परेशानी देखकर उसने थोड़ा पीने–पिलाने का बन्दोबस्त कर दिया। हमें क्या पता था, हमारे न होने पर यहाँ यह सब हो जाएगा ! महाराज ने निरुपाय भाव से कहा।

–अब, आप आगये है तो फिर सब ठीक हो जाएगा, अन्नदाता ! मन परेशान हो तो सहानुभूति में जिस्म भी थक जाता है। आप तन, मन से थके है। विश्राम करें।

–रानी ! यह सब सुनकर मन बड़ा कसैला हो उठा है।

–धड़कनों के सपने जब टूटते हैं तो मन किरच–किरच हो जाता है। आप यो खिन्न होगे तो आपके चाहनेवालो का क्या होगा, मेरे मालिक ! रसकपूर ने महाराज का हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा।

–रानी ! आज तुम हमारी बात मानो तो अपना भरपूर

श्रृंगार करो। तुम्हें देखकर ही हम अपने ये ग़म, ये सदमें भूल सकते हैं।

रसकपूर ने प्याला और मधुपात्र महाराज के सम्मुख रखते हुए कहा– अभी आई, महाराज ! तब तक आप इस बेजान प्याले की ज़िन्दगी सँवार दे। इसके प्यासे अधरों को अपने ओठों से छू तृप्त कर दें।

महाराज फिर एक बार निरुत्तर हो गये। रसकपूर केसर को साथ ले अन्दर चली गई। महाराज ने प्याला उठा लिया। वे पीते रहे, पीते रहे।



रसकपूर जब श्रृंगार करके उनके सामने आई तो महाराज सहसा उसे पहचान नहीं सके। वे बोले– हे रूप की अनन्त राशि ! तुम कौन हो ?

रसकपूर ने विनत स्वरों में कहा– आपकी दासी।

महाराज ने आँखें फाड़ते हुए कहा– कौन ? रसकपूर ! नहीं, ये तुम नहीं हो सकतीं। अनन्त रूप की स्वामिनी, तुम रसकपूर नहीं, तुम तो रूप का साक्षात् कोष हो। तुम रूप का ऐसा ख़ज़ाना हो जिसे तुम जितना भी लुटाओ, वह बढ़ता ही रहेगा। तुम रूपकोषा हो ! रूपकोषा ! तुम नाँचो। झूमकर गाओ। आज अपने आप को हम तुममें खोजाना चाहते हैं।

रसकपूर ने हकलाते हुए पूछा– मैं––मैं नाँचू, महाराज !

–हाँ, रूपकोषा ! हम तुम्हारी एक–एक अदा को अपने मन में बसा लेना चाहते हैं। हम जीते–जी अमर होना चाहते हैं। रूप को मन में बसानेवाला कभी मरता नहीं। हम भी मरना नहीं चाहते। रूपकोषा ! तुम नाँचो।

–महाराज ! आपका हुक्म है तो मैं नाँचूगी भी, गाऊँगी भी। लेकिन यह मेरा आख़िरी नृत्य होगा। आज के बाद आपकी रानी कभी नॉचेगी नहीं।

–हमें मंजूर है, रूपकोषा ! हमें सब मंजूर है। आज नाँचकर तुम इस दिल की धड़कनों को ऐसा अमर संगीत सौंप दो जिसकी शीतलता में हम सदा-सदा के लिए सो जाएँ।

और रसकपूर ने नाँचना शुरू किया। सच में, आज वह रूपकोषा बन गई थी। ग़मज़दा दिल जब नाँचता है तो धड़कनें संगीत बन जाती हैं। आज रूपकोषा के पाँवों में घटाएँ और स्वर में आकाश समा गया था।

महाराज धरती से उठकर आसमान पर जा बैठे। उनके हाथो से प्याला छूटकर जा गिरा। आज वे ऑखो और कानो से मदिरा पी रहे थे।



जोधपुर के स्वर्गीय नरेश भीमसिंह से उदयपुर महाराणा की विश्वमोहनी राजकुमारी कृष्णा का वाग्दान हो चुका था। उनके देहावसान के बाद उदयपुर महाराणा ने अपनी पुत्री का सम्बन्ध महाराज जगतसिंह से करना निश्चित कर दिया। अपने ख़ुबरनवीस से यह सूचना पाकर महाराज की सपनीली ऑखों में नये सपने सज गये। महाराज जगतसिंह ने उदयपुर की राजकुमारी के देवोपम सौन्दर्य के बारे मे बहुत कुछ सुन रखा था। उन्होंने सुना था कि दर्पण तक में उस सौन्दर्य को सम्हाल पाने की क्षमता नहीं है। कृष्णा अपने युग की अनिंद्य सुन्दरी थी।

जब गैंदालाल ने इस बारे में विस्तार से केसर को बताया

तो वह चौंक पड़ी । उसने पूछा– क्या उदयपुर की राजकुमारी अपनी रानी से भी बढ़कर हैं ?

–हाँ, केसर ! जिस दिन वो इन महलों में आ गई, रात को दिये जलाने की ज़रूरत नहीं होगी ।

–कैसी बातें कर रहा है, गैंदा !

–मैं सच कह रहा हूँ । सूरज की रोशनी भी जिससे शरमाती हो, उसकी सुन्दरता का मैं क्या बखान करूँ ? सौन्दर्य वही होता है जो रात के घर में उजाला भरदे । और वो ऐसी ही है ।

–फिर, फिर क्या होगा, गैंदा ! हमारी रानीजी का क्या होगा ? केसर ने आशंकित स्वर से पूछा ।

–क्या होगा ? वे भी और रानियों की तरह महाराज के दर्शन को तरस जाएँगी । गैंदालाल ने सपाट शब्दों में उत्तर दिया ।

–कैसा अशुभ–अशुभ बोल रहा है । क्या हम लोग वो दिन देखने के लिए ज़िन्दा रहेंगे ?

–होनी को कौन टाल सकता है, केसर ! उस अदृष्य सूत्रधार के भ्रू–संचालन से बँधी है आदमी की किस्मत । आदमी स्वयं तो कुछ भी नहीं कर पाता । गैंदालाल ने शून्य में देखते हुए कहा ।

–क्या, इसका कोई उपाय नहीं ?

–हमारे हाथ में क्या है ? लेकिन लगता है, विधाता को कुछ और ही मंज़ूर है ।

–दम निकाल कर साँस की गठरी खोल रहा है ! अरे जल्दी बोल ना ।

–जोधपुर के नये महाराज ने जबसे यह सुना है, वे आग–बबूला हो उठे हैं । उन्होंने इसे जोधपुर राजघराने का अपमान माना है ।

–फिर ?

–फिर क्या ? वात और मूँछों की लड़ाई लड़ने में अपना सर्वस्व होम कर देनेवाले ये राजघराने इसी वजह से तो बनते–बिगड़ते रहे हैं।

–आख़िर होगा क्या ?

–जोधपुर महाराज ने क़सम खाई है कि वे दस्तूर का नारियल जयपुर नहीं पहुँचने देंगे।

–क्या ख़ून–ख़राबा होगा ?

–ये हमारे महाराज पर निर्भर करता है।

–सो कैसे ?

–पुरानी कहावत है, ख़ून के उबाल को हँसके टाल। अगर महाराज ने इसे प्रतिष्ठा का प्रश्न मान लिया तो संघर्ष निश्चित है।

–तुझे क्या लगता है, गैंदा !

–हम लोगों के लिए तो प्रतिष्ठा स्वयं एक प्रश्न है। मैं तो क्या कहूँ ? लेकिन यह तय है, हमारे महाराज इसे हँस कर नहीं टालेंगे।

–मैं रानीजी को इस बात से आगाह कर दूँ ?

–वक़्त का दरिया हर बाँध को तोड़ आगे निकल जाता है। वक़्त न ज़ुल्फ़ों मे बँधता है, न किसी आँख के इशारे से रुकता है। मंसूबों की ऊँचाई आज तक कोई नहीं नाप पाया। महाराज के मंसूबों और आने वाले वक़्त का रानीजी के पास कोई उपचार नहीं। तब भी तू कहना चाहे तो कह देना क्योंकि अचानक लगी चोट बहुत दर्द करती है। रानीजी अपने को सम्हाल तो लेंगी।

और केसर, सब कुछ समझ लेने जैसा विश्वास अपने चेहरे पर बिखेरे, चलदी।



शब्द भी छिटक जाते हैं।

महल में पहुँचकर महाराज ने फिर पूछा– रूपकोषा ! कुछ तो कहो। तुम इतनी चुप क्यों हो ?

–मैं–– मैं क्या कह सकती हूँ, अन्नदाता ! मेरी औकात ही क्या है ! महाराज ने इतना बड़ा फैसला कर लिया, अब मैं क्या कहूँ ?

–ख़ानदानी इज़्ज़त के फ़ैसले किसी सलाह के मुंतज़िर नहीं होते, रूपकोषा ! यह फ़ैसला हमने अपने पुरखों की मान–मर्यादा की रक्षा के लिए किया है। महाराज ने थोड़ा गंभीर होते हुए कहा।

–मेरा वो मतलब नहीं है, अन्नदाता ! मैं तो कह रही थी कि युद्ध में, मैं भी आपके साथ चलूँगी। रसकपूर ने सहमते हुए कहा।

–नहीं, रानी ! युद्ध में स्त्रियों को ले जाने की प्रथा हमारे यहाँ नहीं है। तुम यहीं महलों में ही रहोगी।

–लेकिन, महाराज ! मैं आपके बिना नहीं रह सकती। मैं नहीं रह सकूँगी बिना आपके।

–हम जल्दी ही लौटेंगे। तुम चिन्ता मत करो। हमारे रणबाँकुरे सैनिकों के सामने दुश्मन टिक ही नहीं सकता। ने रसकपूर को अपने पास बिठाते हुए कहा।

रसकपूर ने फिर कहा– महाराज ! मैं क्या करूँ ? मेरा मन नहीं मानता।

–कभी–कभी मन को समझाकर मनाना पड़ता है।

थोड़ा रुककर महाराज ने कहा– अब छोड़ो इन बेकार की बातों को। सुबह तो हम रवाना हो ही जाएँगे।

रसकपूर ने उठते हुए फिर कहा– मैं सच कह रही हूँ मालिक ! मुझे साथ ले चलिये। मेरा दिल ज़ोर–ज़ोर से धड़क

रहा है। अगर आप मुझे यहाँ अकेला छोड़ गये तो फिर मै आपसे कभी नहीं मिल पाऊँगी। मेरे सरताज ! मेरी बात मान लीजिए।

महाराज ने खड़े होकर रसकपूर के कंधों पर हाथ रखते हुए कहा- कैसी पागलपन की बात कर रही हो ? हमारी रुपकोषा क्या हमसे यों जुदा हो सकती है ?

-मर जायेगी आपकी रुपकोषा। महाराज ! आप यकीन करें वो मर जायेगी। यह कहते हुए रसकपूर की आँखें झरना बन गईं।

महाराज ने अपने हाथों से उन आँखों को पोंछते हुए कहा- रुपकोषा नहीं रहेगी तो हम भी नहीं रहेंगे। इसलिए अपनी आँखों को और छलका कर हमारी राहो को गीला न करो।

-जैसी महाराज की मर्ज़ी। मुझे जो अर्ज़ करना था, सो कर दिया। रसकपूर ने हारने के अंदाज़ मे कहा।

महाराज मुसकराते हुए बोले- जाओ, अब तैयार हो जाओ। चाँदनी रात में चाँद को शर्मिन्दा करने के लिए तुम्हारे साथ छत पर टहलेंगे। तुम्हें देख चाँदनी तड़पेगी और चाँद सिसकेगा।

रसकपूर एक निष्प्राण हँसी बिखेरती हुई अन्दर चली गई।

आज उसने वही सुर्ख जोड़ा और वही आभूषण पहने जिन्हे पहन वो पहली बार अपना घर छोड़कर आमेर के महलों में आई थी।

महाराज ने जो रसकपूर को देखा तो देखते ही रह गये। वे धीरे से बोले- कभी-कभी खूबसूरती की आग मे चाँदनी भी जल जाती है।

छत पर टहलते हुए, दूर पहाड़ी पर खामोश खड़े दुर्ग को देखते हुए, रसकपूर ने पूछा- वो क्या है, महाराज !

–वो ? वो सुदर्शनगढ़ है, रानी !

–कितना शान्त, कितना निर्विकार और कितना अन्तमुर्खी है वह गढ़ ।

–तुम्हें अच्छा लगा ?

–बहुत अच्छा ।

–तो युद्ध से लौटकर उसे तुम्हारे नाम कर देंगे ।

–फिर मैं वहीं रहूँगी । आप आयेंगे तो उसे जगमगा दूँगी, नहीं तो होली के अंगारों पर चलते–चलते ज़िन्दगी गुज़ार दूँगी ।

–चढ़ती हुई उमर में थकी बातें आदमी को तोड़ देती हैं । विश्वास की समाधि पर उगाये आशा के पौधे पर कभी फूल नहीं खिलते । तुम ऐसी हारी–हारी बातें क्यों कर रही हो, रानी ! चलो, महल में चलते हैं । महाराज ने रसकपूर की आँखों में झाँकते हुए कहा ।

महल में आकर, रसकपूर महाराज के लिए मदिरा–पात्र और मधुकलश ले आई । उसने पहला जाम तैयार कर काँपते हाथों और झुकी निगाहों से महाराज को पेश किया । महाराज ने प्याला पकड़ने से पहले अपने हाथों से रसकपूर का मुँह ऊपर उठाया तो उसकी आँखों को फिर मोतीभरा पाया । महाराज ने प्याला हाथ में लेते हुए कहा– तुम वियोग के तपते क्षणों की याद कर पिघल रही हो । तुमने ये भी सोचा कि हमारा हाल क्या होगा ? हमने तो तुमसे एक बार भी कुछ नहीं कहा । विवशता को, बिना विवश हुए, स्वीकारना ही बुद्धिमत्ता है ।

रसकपूर ने आँसू पौंछ लिये । वो मुसकराती रही, महाराज पीते रहे और आधी रात होते–होते जल्वागाह के जगमगाते सितारों की छाँह तले महाराज सोगये । रसकपूर रात भर आकाश देखती रही । उसने ऊषा के प्रबल हाथों को जब रात की सितारों जड़ी चूनर को नोंचकर फैंकते हुए देखा तो

वरवस उसने अपनी चुनरी को कसकर पकड़ लिया। उसने रात भर अपनी आँखों से टूटे मोतियों को इधर-उधर धरती पर खोजने को जैसे ही निगाहें झुकाई तो उसे लगा जैसे उन मोतियों की शक्ल में उसका दिल ही टुकड़े-टुकड़े हो वह गया हो और वह रातभर अपनी आँखों से दिल के क़तरा-क़तरा होकर विखरने का वह तमाशा देखती रही हो।



महाराज ने सुवह जव प्रस्थान किया तो रसकपूर चाहकर भी उनके सामने नहीं जासकी। वह अपनी पराश्रयता और निर्वलता को जग-जाहिर नहीं करना चाहती थीं। अपनी वास्तविकता छिपाने में कभी-कभी आदमी इतना कृत्रिम हो जाता है कि अपनी पहचान ही खो वैठता है।

महाराज ने चलते समय महलों पर नजर डाली भी। वहाँ उन्हे भीड़ तो दिखाई दी लेकिन चेहरा नजर नहीं आया। उनका काफ़िला आगे वढ़ गया।

रसकपूर वहुत देर तक अपने महल में खड़ी-खड़ी हवाओं में महाराज के जाने की आहट सुनती रही और जव वह खुशबू आना वंद हो गई तो वह कटे पांव वाले पक्षी की तरह पलंग पर लुढ़क गई। आज उसकी दुनिया वीरान हो गई थी। दिन का उजाला उसे वहुत दूर तक अँधेरा दे गया था।

केसर उसके पास खड़ी थी लेकिन गुमसुम। आज वह भी शब्दहीन हो गई थी। आशाओं का ध्रुवतारा जव वादल की ओट में हो जाता है तव संकल्प भी अनाथ हो जाते हैं। आज रसकपूर अनाथ हो गई थी।

रात हुई तो केसर ने धीरे से कहा- रानीजी ! सूरज ढल

गया। आप अपने को सम्हालें।

रसकपूर ने आँखें खोलते हुए कहा– केसर ! तेरी रानी ऐसे अँधेरों में घिर गई है जहाँ साया तक साथ छोड़ देता है। तू यहाँ क्या कर रही है ?

–कैसी बातें कर रही हैं आप, रानीजी ! अँधेरा छँटेगा और फिर सुबह होगी। केसर ने सांत्वना के स्वर में कहा।

रसकपूर न चाहते हुए भी उठी और सम्हलकर बैठती हुई बोली– केसर ! अब क्या होगा ? महाराज लौटेंगे तो उदयपुर की राजकुमारी उनके साथ होगी। क्या अब कभी मैं उनके दर्शन नहीं कर पाऊँगी ?

– ऐसा कैसे हो सकता है, रानीजी ! महाराज किसी को भी भूल सकते हैं लेकिन आपको नहीं। मुझे पता है, महाराज आपको दिल से प्यार करते हैं। केसर ने दीपक जलाते हुए कहा।

रसकपूर ने एक लम्बी साँस लेते हुए कहा– केसर ! ये दुनिया बड़ी ज़ालिम है। दिल से खेलने और दिल टूटने के किस्से तो दुनिया के इतिहास में मिल जाएँगे लेकिन दिल के मक़बरे नहीं मिलते। इस बार तू दिल का मक़बरा देखेगी। जिस्म तो जल जाता है, मिट्टी में मिल जाता है लेकिन दिल न जलता है, न दफ़्न हो पाता है। दिल, दिल ही होता है। तू देखना !

–कैसी बातें करने लगीं आप ? रानीजी ! सब ठीक हो जाएगा। आप महाराज को वापिस लौटकर आने तो दें। केसर कहने को तो कह गई लेकिन उसे ख़ुद अपनी बात पर विश्वास नहीं हुआ।

फिर दिन बीतने लगे। सप्ताह बीते। महीने बीतते चले गये। रसकपूर ने कितने ही लोग महाराज के पास अपने संदेश लेकर भेजे लेकिन कोई वापिस लौटकर नहीं आया।

रसकपूर की आँखों से नींद उड़ चुकी थी। उसके सपने, उसकी आँखों के सामने, आँसुओं में डूब कर जल समाधि ले चुके थे। अब वह न महल से निकलती, न किसी से बात करती। केसर के अलावा उस महल की ओर कोई आता भी नहीं था।

एक दिन, सुबह के तारे की छाया में आकर गैंदालाल ने कहा– रानी साहिबा! महाराज ने जोधपुर के सैनिकों को बहुत पहले परास्त कर दिया था। वे जयपुर लौटने को थे किन्तु सलाहकारों द्वारा जोधपुर को सबक सिखाने का आग्रह करने पर वे जोधपुर की ओर चले गये। वहाँ का किला जयपुर के सैनिकों ने घेर रक्खा है।

रसकपूर ने धीरे से कहा– भैया! मुझ पर एक उपकार करोगे?

गैंदालाल भीग-भीग गया। वह बोला– रानी साहिबा! जान दे दूँगा। आप हुक्म तो करें।

रसकपूर बोली– भैया! मेरा एक पत्र महाराज को देकर उसका उत्तर लाकर मुझे जीने की आस तो बँधा दो।

गैंदालाल ने झुकते हुए कहा– रानी साहिबा! आप पत्र दें। मैं आज ही जोधपुर के लिए रवाना हो जाऊँगा।

और रसकपूर ने बरसती आँखों से एक गीला पत्र लिखकर गैंदालाल को दे दिया।

जोधपुर किले का घेरा डाले जयपुर की सेना को कई महीने हो चुके हैं।

इस बीच महाराज को जयपुर के समाचार नहीं मिले।

समाचारों में मुख्य विवरण होता रसकपूर के ज़ुल्मो–सितम का। रसकपूर किस तरह महाराज की ग़ैर–मौजूदगी में प्रजा पर कहर ढ़ा रही है ? कैसे महाराज के ख़िलाफ़ लोगों को उकसा रही है ? कैसे और लोगों से मेलजोल बढ़ाकर पूरी रियासत हथियाने की कोशिश कर रही है ?

ये ख़बरें सुन एक दिन झल्लाकर महाराज ने कहा– तुम बोहराजी से जाकर कहो, वे रसकपूर के बारे में सारी जानकारी इकट्ठी कर हमें मिलें।

इसी घड़ी का तो बेसब्री से इंतज़ार कर रहे थे रसकपूर के दुश्मन। रसकपूर के ख़िलाफ़ एक पूरी फ़हरिस्त बनाई गई। महारानी भटियाणी और बोहराजी ने मिलकर इस काम को बख़ूबी अंजाम दिया। महाराज के साथ दूनी ठाकुर तो थे ही, बोहराजी के साथ मेघसिंह भी महाराज के हुज़ूर में हाज़िर हो गये।

शाम को छोलदारी में ही दरबार लगा। महाराज बोले– राजधानी से इन दिनों जो भी ख़बरें आईं हैं, वे रसकपूर के ख़िलाफ़ ही आईं हैं और हम जानते हैं, वे किन्होंने भिजवाईं हैं।

बोहराजी की ओर तीखी निगाह से देखते हुए महाराज ने फिर कहा– रसकपूर की ओर से हमें एक भी संदेश नहीं मिला। आख़िर ऐसा क्या कर दिया रसकपूर ने ?

बोहराजी ने खड़े होकर कहा– महाराज ! अपराध क्षमा करें तो अर्ज़ करूँ।

–आप बेझिझक कहिये। हम असलियत जानना चाहते हैं। महाराज ने धीरे से कहा।

बोहराजी बोले– महाराज ये बाईजी––––

महाराज ने तनिक तेज़ स्वर में टोकते हुए कहा– बोहराजी ! रसकपूर को बाईजी कहना हमारी तौहीन करना है।

– जान बख्शें, महाराज ! पहले आप पूरी
ज़िन्दगी भर उन्हें वही कहेंगे जो आप हुक्म

त से कहा– ठीक है, कहिये !

महाराज ! ये कोठे वाली बाईजी पहले
इश्क में मुब्तिला थीं। उसी ने इन्हें सलाह
अपनी ख़ूबसूरती के बल पर राजमहल में
त लूटले। योजना के अनुसार बाईजी
होने अपने रूप के जादू से आपको अपने

है आप, बोहराजी !

खड़ा वह दाढ़ीवाला लड़का चंदन,
है और ये महलों का हीरों जड़ा हार
।

महाराज किसी बीते दिन की याद में
को देखते, कभी हार को।

– महाराज !

द पड़े– तुम ख़ामोश रहो। समझे।

समझते हुए भी कुछ न कर सके।
सरदार, दरबारी बोहराजी के साथ थे।
ठीक है, बोहराजी ! हम इस किस्से
र ही फ़ैसला करेंगे। तब तक रसकपूर
ज़नानी ड्योढ़ी भेजदें।

अपनी आँखों को पोंछ लिया।

समाचारों में मुख्य विवरण होता रसकपूर के ज़ुल्मो-सितम का। रसकपूर किस तरह महाराज की ग़ैर-मौजूदगी में प्रजा पर कहर ढ़ा रही है ? कैसे महाराज के ख़िलाफ़ लोगों को उकसा रही है ? कैसे और लोगों से मेलजोल बढ़ाकर पूरी रियासत हथियाने की कोशिश कर रही है ?

ये ख़बरें सुन एक दिन झल्लाकर महाराज ने कहा- तुम बोहराजी से जाकर कहो, वे रसकपूर के बारे में सारी जानकारी इकट्ठी कर हमें मिलें।

इसी घड़ी का तो बेसब्री से इंतज़ार कर रहे थे रसकपूर के दुश्मन। रसकपूर के ख़िलाफ़ एक पूरी फ़हरिस्त बनाई गई। महारानी भटियाणी और बोहराजी ने मिलकर इस काम को बख़ूबी अंजाम दिया। महाराज के साथ दूनी ठाकुर तो थे ही, बोहराजी के साथ मेघसिंह भी महाराज के हुज़ूर में हाज़िर हो गये।

शाम को छोलदारी में ही दरबार लगा। महाराज बोले- राजधानी से इन दिनों जो भी ख़बरें आई हैं, वे रसकपूर के ख़िलाफ़ ही आई हैं और हम जानते हैं, वे किन्होंने भिजवाई हैं।

बोहराजी की ओर तीखी निगाह से देखते हुए महाराज ने फिर कहा- रसकपूर की ओर से हमें एक भी संदेश नहीं मिला। आख़िर ऐसा क्या कर दिया रसकपूर ने ?

बोहराजी ने खड़े होकर कहा- महाराज ! अपराध क्षमा करें तो अर्ज़ करूँ।

-आप बेझिझक कहिये। हम असलियत जानना चाहते हैं। महाराज ने धीरे से कहा।

बोहराजी बोले- महाराज ये बाईजी----

महाराज ने तनिक तेज़ स्वर में टोकते हुए कहा- बोहराजी ! रसकपूर को बाईजी कहना हमारी तौहीन करना है।

दोहराजी बोले– जान बख्शे, महाराज ! पहले आप पूरी बात सुनलें फिर हम ज़िन्दगी भर उन्हे वहीं कहेंगे जो आप हुक्म देंगे।

महाराज ने संकेत से कहा– ठीक है, कहिये !

बोहराजी बोले– महाराज ! ये कोठे वाली बाईजी पहले से ही एक नौजवान के इश्क में मुब्तिला थीं। उसी ने इन्हें सलाह दी कि वह किसी तरह अपनी ख़ूबसूरती के बल पर राजमहल में पहुँच वहाँ की सारी दौलत लूटले। योजना के अनुसार बाईजी महल में आ गई और उन्होने अपने रूप के जादू से आपको अपने वश में कर लिया।

–ये क्या कह रहे हैं आप, बोहराजी !

–हुजूर ! कौने में खड़ा वह दाढ़ीवाला लड़का चंदन, बाईजी का पुराना आशिक है और ये महलो का हीरों जड़ा हार बाईजी ने इसको दिया था।

चंदन नाम सुनकर महाराज किसी बीते दिन की याद में खो गये। कभी वो चंदन को देखते, कभी हार को।

चंदन धीरे से बोला– महाराज !

बोहराजी बीच में कूद पड़े– तुम खामोश रहो। समझे।

महाराज सब कुछ समझते हुए भी कुछ न कर सके। लड़ाई का मैदान और सारे सरदार, दरबारी बोहराजी के साथ थे। उन्होंने बुझे स्वर मे कहा– ठीक है, बोहराजी ! हम इस किस्से को पूरी तरह सुन, समझकर ही फ़ैसला करेंगे। तब तक रसकपूर को आप महल से हटाकर जनानी ड्योढ़ी भेजदें।

चंदन ने मुँह फेरकर अपनी आँखों को पोंछ लिया।



जब रसकपूर ने सुना कि महाराज का काफ़िला जयपुर के लिए चल पड़ा है तो वह खुशी के मारे नाँच उठी। उसने केसर को, अपनी बाँहों में कस, कई-कई बार चूमा। वह बोली- केसर! महाराज आ रहे हैं। और उनके आने पर फिर सब ठीक हो जाएगा।

केसर अपने को रसकपूर के हाथों से छुड़ा कर चुप खड़ी रही।

रसकपूर फिर बोली- केसर! तुझे ख़ुशी नहीं हुई अपनी रानी के बिगड़े मुक़द्दर को सँवरता देख।

केसर बोली- रानीजी! आप शकुन मानती हैं?

-शकुन? क्या मतलब?

- मेरी कल से दाँई आँख बिना रुके फड़क रही है।

-ये सब कहने की बातें हैं, केसर! आँख फड़कने से क्या होता है?

-पुराने लोगों ने ये कुछ संकेत बना रखे थे।

-ये सब बेकार की बाते हैं। दाँई आँख तो मेरी भी कई बार, और ज़ोर-ज़ोर से फड़की है तभी मैंने सुना कि महाराज पधार रहे हैं। बता इसे मैं अपशकुन कैसे मानलूँ? रसकपूर ने हाथ नँचाते हुए पूछा।

इतने में ही बोहराजी ने वहाँ पहुँचकर कहा- रानीजी! चलिये, महाराज का हुक्म आया है।

-महाराज आ गये? चिल्लाती हुई, बेसुध सी रसकपूर, जैसे खड़ी थी वैसे ही, बोहराजी के साथ चलदी। वह भागकर महाराज के पास पहुँच जाना चाहती थी। बोहराजी धीरे-धीरे चल रहे थे। रसकपूर ने रुकते हुए पूछा- महाराज! महलों में आगये?

बोहराजी ने कहा– नहीं ! अभी महाराज जयपुर नहीं पहुँचे हैं पर हाँ, एक–दो दिन में पहुँच जाएँगे।

–तो फिर, मैं बेकार आपके साथ चलदी।

रसकपूर ने लौटने के लिए मुड़ते हुए कहा।

बोहराजी बोले– रुकिये।

और उन्होने जैसे ही ताली बजाई, चार सैनिक सामने आकर खड़े हो गये। बोहराजी ने आदेश देते हुए कहा– बाईजी को जनानी ड्योढ़ी में पहुँचा आओ।

–क्या ? रसकपूर को चक्कर आ गया। वो जनानी ड्योढ़ी के किस्से केसर से सुन चुकी थी। उसने धीरे से पूछा– ये– ये क्या कह रहे हैं आप ?

बोहराजी ने उसी लहज़े में कहा– बाईजी ! ये महाराज का हुक्म है। मैं भला क्या कर सकता हूँ ?

रसकपूर लड़खड़ा कर गिरने को हुई कि भागकर केसर ने उसे सम्हाल लिया।

बोहराजी कड़कती आवाज़ में बोले– इस बाईजी को तू इसके हाल पर छोड़ दे और यहाँ से दफ़ा हो जा, नहीं तो तू भी गैंदालाल के पास भेजदी जाएगी।

केसर की आँखें फैल गईं। रसकपूर भी समझ गई कि गैंदालाल को महाराज तक पहुँचने से पहले ही इन लोगों ने खत्म करवा दिया। केसर मूर्ति बनी वहीं खड़ी रह गई और वह क़ाफ़िला आगे बढ़ गया।

जनानी ड्योढ़ी के उस ताली बजाऊ मुंतज़िम ने जब रसकपूर को सामने खड़ा देखा तो वह टेढ़ा मुँह कर, अट्टहास करते हुए, बोला– बहुत देर लगादी बाईजी , आपने यहाँ आने में ? मैंने तो बरसों से आपके लिए एक अलग कोठरी रख छोड़ी थी।

फिर उसने एक भद्दी सी गाली देते हुए सामने खड़ी दासी से कहा– इस जनमजली को लें जाकर डाल दे उस अँधेरी कोठरी में। बड़ा खून पिया है इसने इस रियासत का।

और रसकपूर कभी न ख़त्म होने वाले उस अँधेरे का एक हिस्सा बन गई।



महाराज महीनों बाद जयपुर लौट रहे थे। सारा शहर दुलहिन की तरह सज–सँवर उठा था। जगह–जगह पर तोरणद्वारा बनाये गये थे। रंग–बिरंगी पताकाओं से पूरा नगर ढ़क गया था। चंद्रमहल गुलाब का फूल बन मुसकरा उठा था।

रसकपूर को भी उड़ते–उड़ते यह भनक मिल गई कि महाराज कल जयपुर पहुँच रहे हैं। उसकी पथराई आँखें फिर सजीव हो उठीं। उसे लगा, महाराज उसको न पाकर सारे महल को अधर उठा देंगे और उसे बुलाकर अपने गले से लगा लेंगे। उसने अपनी आँखें मूँदलीं जिससे यह सपना कहीं टूट न जाए।

महाराज को जयपुर वापिस आते हुए बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा था। वापिस लौटती सेना पर पीछे से जोधपुर और सामने से टोंक की सेना ने हमला कर दिया। महाराज दो पाटों के बीच में आ गये थे। उन्हें किसी तरह उनके बहादुर दरबारियों और सैनिकों ने सुरक्षित निकाला। उन्हें इस प्रकार बचाकर निकालने वालों में दूनी ठाकुर, मेघसिंह, बोहराजी, रामचन्द्र और पुरोहितजी प्रमुख थे। महाराज को लगा जैसे उनकी वजह से ही उन्हें नया जीवन मिला है। कृतज्ञता से उनकी आँखें झुक गईं। उपकार स्वीकार करनेवाले व्यक्ति, सामान्यतः, इस संसार में नहीं मिलते।

इक्कीस तोपों की सलामी ने महाराज की अगवानी की। महाराज नगरवासियों का अभिनन्दन स्वीकारते हुए, जयघोष के बीच, चन्द्रमहल पहुँचे। वहाँ थोड़ी देर रुककर, विश्राम करने के लिए, वे आमेर प्रस्थान कर गये। महाराज के इस प्रकार आमेर चले जाने पर सर्वाधिक विस्मय हुआ केसर को और हार्दिक प्रसन्नता हुई बोहराजी को।

महाराज आमेर चले तो गये थे लेकिन उनका मन कहीं चन्द्रमहल में रह गया था। मदिरा के छलकते पात्र को मजबूती से पकड़ते हुए, मुँदी आँख, महाराज बोले– मैं बहुत थक गया हूँ। बहुत टूट गया हूँ, रसकपूर! मेरी रूपकोषा! मैं तुम्हारी गोद में सोना चाहता हूँ।

किसी ने काँपते स्वर मे कहा– जहाँपनाह! मैं रसकपूर नहीं हूँ।

महाराज ने एक बार आँख खोल उस चेहरे को देखा और मधुपात्र ज़ोर से एक ओर फैंक सो गये।

अगले दिन, दरबार में सारे ही दरबारी उपस्थित थे। महाराज के आगमन पर उन्हे बधाई तो देनी ही थी। बोहराजी का सबसे विशेष आग्रह भी था दरबार मे आने का। दूनी ठाकुर ने संदेशवाहक भेज कर उन राव-राजाओं को भी बुलवा लिया था, जो पहुँच नहीं पाये थे।

महाराज मंथर गति से चलते हुए सिंहासन तक आये और बैठ गये। आज दूसरा सिंहासन वहाँ नहीं था। सारे दरबारी बैठ चुके थे। दरबार में इतनी भीड़ देख महाराज भी कौतूहल में थे। तभी एक-एक दरबारी ने उठकर महाराज को नज़राना पेश करना शुरु किया। अंत में, बोहराजी ने महाराज के यशस्वी, विजयी, दीर्घ जीवन की कामना करते हुए नमन् किया।

महाराज बोले– यह सब आपकी दुआओं का ही फल है कि संकट की घड़ी टल गई और हम आपसे आकर मिल सके।

दूनी ठाकुर ने खड़े होते हुए कहा– अन्नदाता ! जब आप ऐसा कहते हैं तो हमें सारा जीवन व्यर्थ लगने लगता है।

महाराज ने कहा– हम जानते हैं। अपने प्रति दरबार का स्नेह हम जानते हैं।

थोड़ी देर के लिए दरबार में सबके ओठों पर चुप्पी आकर बैठ गई।

महाराज इस अवसर का लाभ उठाकर उठने को ही थे कि बोहराजी खड़े होकर बोले– महाराज ! आपकी आज्ञानुसार जयपुर की आधी रियासत की मालकिन के विरुद्ध सप्रमाण सारे आरोप एकत्र कर लिये गये हैं यदि आदेश हो तो सेवा में प्रस्तुत करूँ।

महाराज ने दरबार पर एक निगाह डाली।

मेघसिंह ने खड़े होकर कहा– महाराज ! ऐसा दुस्साहस न कभी देखा गया, न कभी सुना गया।

दूनी ठाकुर बोले– अन्नदाता ! एक नर्तकी ने कभी भी जीवन में ऐसी महत्वाकांक्षा नहीं रक्खी होगी।

पुरोहितजी ने कहा– मालिक ! इस चरित्र से यह प्रमाणित हो गया है कि नारी कुछ भी कर सकती है। आदिकाल से रहस्य बनी नारी आज भी उतनी ही रहस्यमय है। नारी का मन अनेक अंतरिक्षों का संधि–स्थल है।

महाराज खड़े होते हुए बोले– इस प्रकरण की सुनवाई कल से करेंगे।

दरबारियों की आँखों में एक अजीब सी चमक कौंध गई।



रात को महाराज चाहते हुए भी मधु सेवन नहीं कर सके। मन बहलाव के सभी साधनों से उन्हें वितृष्णा सी हो गई। वे समझ गये थे कि रसकपूर की सुरक्षा अब वे नहीं कर सकेंगे। सर्वविदित असत्य भी साक्षियों से सत्य बन जाता है। जब प्रभुता साक्षी को प्रभावित करती है तब न्याय की अकाल मृत्यु हो जाती है।

आज महाराज सारी रात नहीं सो सके।

रसकपूर के विरुद्ध दरबार में खुली सुनवाई की बात सारे शहर में फैल गई थी। इस देश के संस्कारों में पक्ष-विपक्ष के समूह स्वतः बन जाने की बड़ी आदिमकालीन परम्परा है।

कुछ लोगों ने कहा-विचारी का यही दोष है कि वह बड़ी सुन्दर है।

दूसरों की दृष्टि में वह भोलेपन की आड़ में सब कुछ लूटने वाली छलना थी।

एक ने कहा- मैंने उसे बहुत पास से देखा है, उसकी आँखों में सिर्फ़ प्यार है।

दूसरा बोला- ऐसी औरतें अपने मन की बात छिपाने में बड़ी निपुण होती हैं।

किसी ने कहा- औरत की प्रगति आदमी को किसी भी युग में नहीं सुहाई।

कोई चलता-चलता कह गया- नारी के गुणों के प्रति नमित होने का साहस पुरुष कभी नहीं जुटा पाया।

महाराज जब दरबार में पहुँचे तब तक पूरा दरबार तो भर ही चुका था, नगर के गणमान्य जन भी दर्शक दीर्घाओं में आकर बैठ गये थे।

महाराज के सिंहासन पर बैठते ही बोहराजी खड़े होकर बोले– महाराज ! यह प्रकरण आधी रियासत की स्वामिनि का है इसलिए सामान्य जन की तुलना में अधिक गंभीर है।

महाराज धीरे से बोले– बोहराजी ! भूमिका की कोई आवश्यकता नहीं है।

–जो आज्ञा, महाराज ! बोहराजी ने सिर झुकाते हुए कहा– महाराज ! महलों में आने से पहले रसकपूर इसी नगर की एक रूपवती नर्तकी के रूप में चर्चित हो चुकी थी। वह अपने सौन्दर्य के बल पर इन महलों में आई और महाराज की उदारता के फलस्वरूप आधी रियासत की मालकिन बन बैठी।

–आप व्यर्थ की कहानी सुना रहे हैं, बोहराजी ! इतनी बात हमें और सबको ज्ञात है।

–जी, महाराज ! क्षमा करें। मैंने तो संक्षेप में उनका इतिहास कहना चाहा था।

–इसकी आवश्यकता नहीं।

महाराज का रुख देखकर बोहराजी बोले– रसकपूर ने सत्ता में स्वयं को स्थापित कर टोंक के नवाब अमीर ख़ाँ से सम्पर्क स्थापित किया और जयपुर को दोनों हाथों से लूटने के लिए उसे आमंत्रित किया।

–ऐसा कैसे हो सकता है ? महाराज ने टोकते हुए कहा।

एक दरबारी उठकर बोला– महाराज ! मैंने स्वयं अमीर ख़ाँ को यह कहते सुना था।

मेघसिंह ने खड़े होकर कहा– महाराज ! एक हीरों का हार तो आपको बोहराजी लड़ाई के मैदान में पेश कर ही चुके हैं, ये हीरों जड़े कंगन रसकपूर ने कोठेवाली अपनी अम्मी को दिये थे। वो दोनों हाथों से महल को लूट रही थी और अपना घर भर रही थी।

इतना कह मेघसिंह ने वे कंगन महाराज के सामने रख दिये।

मेघसिंह बैठे तो चाँदसिंह ने खड़े होकर कहा– अन्नदाता के जोधपुर से लौटते समय अमीर खाँ ने जो सामने से हमला किया था, वह षड़यंत्र भी रसकपूर ने तैयार किया था जिससे यदि परमात्मा न करे और उसने बहुत रक्षा की, कोई दुर्घटना हो जाती तो पूरी रियासत की वह एकछत्र मालकिन बन जाती।

– ये ––ये क्या कह रहे हो, दूनी ठाकुर ? महाराज ने बड़ी बेबस निगाहों से उन्हे देखते हुए पूछा।

एक अन्य दरबारी ने खड़े होकर कहा– महाराज ! रसकपूर की माँ नूरी बेग़म ख़ुद टोंक गई थी और उसी ने वहाँ के नवाब से मिलकर पूरी सौदेबाज़ी करके यह योजना बनाई थी।

बोहराजी ने इसी बीच खड़े होकर कहा– महाराज ! इन्हीं बाईजी ने मिश्रजी से बहुत ग़लत काम करवाये। हुज़ूर के वफादारों को नौकरी से निकलवा दिया। बहुतों को मरवा दिया। मिश्रजी उस आत्म–ग्लानि को सहन नहीं कर सके और ज़हर पीकर हमेशा के लिए सो गये।

महाराज का मन बहुत खिन्न हो चला था। वे उठते हुए बोले– इस प्रकरण की सुनवाई प्रतिदिन होगी। आपको जो भी कहना हो, अपराध सिद्ध करने हों, उन्हे पूरी तरह से तैयार करलें।

और महाराज दरबार छोड़कर चले गये।



लगातार कई दिनों तक दरबार में रसकपूर का नाम गूँजता रहा। एक व्यक्ति खड़ा होकर आरोप लगाता, दूसरा आदमी उसकी सत्यता प्रमाणित कर देता।

महाराज ने यह सब देख, सुनकर, टोकते हुए कहा- महाभारत के युद्ध में तो साथ महारथियों के बीच अभिमन्यु फँस गया था और उसे अपनी जान से हाथ धोना पड़ा था। यहाँ तो एक निरीह अबला असँख्यों में फँस गई है, वो कैसे बच सकती है ?

यह सुन चाँदसिंह ने खड़े होकर कहा- अन्नदाता ! अपराध ही ऐसे जघन्य हैं कि उनसे बचाव संभव नहीं। मैं इन बाईजी का सबसे घिनौना रूप प्रस्तुत करता हूँ।

महाराज सम्हल कर बैठ गये।

चाँदसिंह बोले- अन्नदाता ! उदयपुर की राजकुमारी कृष्णा की सुन्दरता चाँद को भी माँद करती थी। यह सर्वविदित है। महाराज से उसके सम्बन्ध होनेकी चर्चा भी पूरी रियासत में फैल चुकी थी। रसकपूरने यह सोचकर कि अगर ऐसी रूपवती राजकुमारी महलों में आ गई तो वह महाराज की निगाहों से गिर जाएगी,उसने टोंक नवाब से मिलकर ऐसा शर्मनाक षड़यंत्र रचा कि नवाब ने उदयपुर पहुँचकर वहाँ के महाराणा को ख़ूनी शब्दों में कह डाला- राजकुमारी कृष्णा का विवाह जयपुर महाराज से नहीं हो सकता। या तो उसे जोधपुर भेज दो, या यमलोक।

अपनी बात के धनी महाराणा को विवश होकर, रूप की साक्षात् प्रतिमूर्ति, अपनी लाड़ली राजकुमारी कृष्णा को अपने हाथों विष देना पड़ा। •

सारे दरबार में सन्नाटा छा गया। थोड़ा रुककर दूनी ठाकुर ने फिर कहा- ऐसी षड़यंत्र निपुण बाईजी का इस धरती

पर रहना समूची मानवता के लिए घातक है।

झूँठे तर्क मन को अधिक छूते हैं। सत्य तो सहज और स्पष्ट होता है, वह सत्य होता है इसलिए सदैव प्रमाणित नहीं किया जा सकता। झूँठ निर्मित होता है, इसलिए प्रमाण अपने साथ रखता है।

चाँदसिंह तो बैठ गये लेकिन यह आरोप इतना प्रबल और प्रखर था कि महाराज की उपस्थिति मे पहली बार सारा दरबार मुखरित हो उठा। दरबारियों से नागरिकगण तक एक-दूसरे से चर्चा करने में लिप्त हो गये।

महाराज निरीह भाव से चारों ओर देखते हुए बोले- बोहराजी ! रसकपूर के सारे अपराध हमने सुन लिये, अब अपराधी को भी अपनी सफ़ाई पेश करने का अधिकार मिलना चाहिए।

चाँदसिंह ने तत्काल खड़े होकर कहा- अन्नदाता ! महाराज का अमंगल चाहनेवाली, राजद्रोही, हत्यारिन को दरबार में बुलाना पूरे दरबार का अपमान है।

सारे दरबारी एक साथ बोल पड़े- रसकपूर राजद्रोही है। रसकपूर हत्यारिन है।

हाथ के इशारे से सबको चुप करते हुए खड़े होकर बोहराजी बोले- महाराज ! अपराध स्पष्ट हैं, गंभीर हैं और प्रमाणित हैं। अब इसके लिए किसी सफ़ाई की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। अब तो पूरे दरबार को और रियासत की रियाया को आपके फ़ैसले का इंतज़ार है।

महाराज बिना कुछ कहे दरबार से उठकर चले गये।



महाराज ने महलों में जाकर अपने हाथों से मदिरा पी । उन्होंने सब दासी-दासियों को बाहर निकाल दिया । वे पीते रहे, पीते रहे और पीते ही चले गये ।

तभी उन्होंने देखा अचानक रसकपूर उनके सामने आकर खड़ी हो गई । बाल रूखे,चेहरा सूखा हुआ, आँखें सूजी हुईं । उन्होंने सुना,वह कह रही थी- देखा, महाराज ! मैंने कहा था ना, अगर आप मुझे यहाँ अकेला छोड़ गये तो मैं आपसे फिर कभी नहीं मिल पाऊँगी । लेकिन, मेरे सरताज ! आपने मेरी बात नहीं मानी ।

थोड़ी देर बाद उन्हें नाँचती हुई, मदिरा पिलाती हुई, फूलों से सजी रसकपूर दिखाई देने लगी ।

फिर अचानक उनकी निगाहों में दरबार घूम गया । कभी बोहराजी, कभी चाँदसिंह, कभी मेघसिंह के चेहरे आने-जाने लगे और फिर उनके कानों में आवाज़े गूँजने लगीं- रसकपूर राजद्रोही है ? रसकपूर हत्यारिन है ।

महाराज ने फिर मदिरा पात्र भरा और पी गये ।

कभी रसकपूर के साथ विताये क्षण उनकी निगाहों में त तो कभी दरबार उनकी आँखों में उतर आता ।

महाराज महल से बाहर आकर खड़े हो गये । मध्यरात्रि के खिले चाँद को वे वहुत देर तक निहारते रहे । उन्हें लगा, चाँद में खड़ी रसकपूर खिलखिलाकर हँस रही है और आँसू-आँसू होकर पूछ रही है- इसी दिन के लिए मुझे रानी बनाया था, आपने ? क्या यही दुर्गति करने के लिए रूपकोषा नाम दिया था ? क्या समर्पित प्रेम का यही प्रतिदान होता है, मेरे मालिक !

महाराज दोनों हाथों से सिर थामकर बैठ गये । रसकपूर

उनके सामने आकर खड़ी हो गई। महाराज ने आँखे उठाकर देखा तो लगा वह कह रही थी– मेरे सरताज ! आप इतने उदास क्यों हैं ? आपकी मुस्कान पर हज़ार रसकपूर न्यौछावर। चढ़ा डालिये मुझे सूली पर मैं उफ तक नही करूँगी। मैंने प्यार किया है, तिजारत नहीं।

महाराज चिल्लाये– रसकपूर ! मेरी रूपकोषा ! मुझे बाहों में ले लो। मुझ डूबते को बचालो।

उन्होंने इधर–उधर निगाहें दौड़ाईं लेकिन वहाँ कोई नहीं था। अब उनकी निगाहों में फिर दरबार घूमने लगा। उन्होंने अनजाने ही ताली बजादी। दासी सामने आकर खड़ी हो गई। महाराज बोले– शहर कोतवाल को बुलावाओ।

थोड़ी देर में शहर कोतवाल महाराज के सामने सिर झुकाये खड़ा था। महाराज धीरे–धीरे खड़े हुए कि अचानक गिर पड़े– शहर कोतवाल ने उन्हें उठाया तो वो चीख सा पड़ा– अन्नदाता ! आपको तो बहुत तेज़ बुखार है।

कोतवाल ने दासी को बुलाकर कहा– शीघ्र राजवैद्य को बुलवाओ।

महाराज को सहारा देकर कोतवाल पलंग के पास तक ले गया तो वे कटे पेड़ की तरह पलंग पर गिर पड़े। उनकी ऑखें बोझिल होकर मुँदती जा रही थीं। वे धीरे से बोलने लगे– बोहराजी ! मेघसिंह ! दूनी ठाकुर ! हम जानते हैं कि रसकपूर निरपराध है। वह निर्दोष है। उसने हमें सच्चे दिल से प्यार किया है। आप जात–पाँत, ऊँच–नीच, कुल–मर्यादा के भँवर में उलझ कर महल के षड़यंत्र का एक हिस्सा बन गये हैं।

महाराज उसी बेहोशी के आलम में बोलते जा रहे थे– हमें पता है, आप लोगों ने कितनी मेहनत करके, भगीरथ प्रयास से, इस षड़यंत्र का ताना–बाना बुना है। जयपुर वापिस लौटते समय आप लोगों ने हमारी जो ज़िन्दगी बचाई उसका

मुआवज़ा तो हमें देना ही पड़ेगा। हमें अपनी ज़िन्दगी के एवज़ में अपने प्राणों की, रसकपूर की, कुर्बानी देनी ही पड़ेगी।

थोड़ा रुककर वे फिर बोले– हमने लड़ाई से लौटने प अपनी रूपकोषा को सुदर्शनगढ़ देने का वचन दिया था।

महाराज पर बेहोशी छाने लगी थी। शहर कोतवाल सि झुकाये महाराज के आदेश की प्रतीक्षा में खड़ा था।

इतने में महाराज चिल्लाये– ले जाओ रसकपूर क सुदर्शनगढ़ और सुबह होते–होते दीवार में चुनवा दो।

कोतवाल ने सिर झुकाया और चला गया।

महाराज ने टूटते शब्दों में कहा– फिर सबके दिलों मे ठंडक पड़ जाएगी। शायद एक प्यार भरे दिलके ख़ून से उन लोगों की आँखों में भरी नफ़रत धुल जाए। यह भी क्या दुनिय है जहाँ नफ़रत को मिटाने के लिए प्यार को कुर्बानी देनी पड़त है।

और महाराज गहरी नींद में डूब गये।



रात के तीसरे पहर जब रसकपूर जनानी ड्योढ़ी से बाह निकली तो उसने टूटती आवाज़ में पूछा– क्या महाराज ने बुलवाया है?

– नहीं, महाराज ने हुक्म दिया है आपको सुदर्शनगढ़ पहुँचाने का।

एक फीकी हँसी रसकपूर के पीले ओठों को गुलाबी कर गई।

सामने खड़ी बैलगाड़ी में बैठ गई रसकपूर। हीरे–मोती

जड़ी, मखमली डोली में आई रसकपूर, खुली बैलगाड़ी में बैठी तो उसकी आँखें गीली हो गई। उसने एक बार गर्दन घुमाकर शान से खड़े उस शान्त चन्द्रमहल को देखा।

बैलगाड़ी चल दी। रात्रि का अंतिम प्रहर बीतते-बीतते रसकपूर सुदर्शनगढ़ पहुँच गई। जब वो बैलगाड़ी से उतरी तो उसने कोतवाल से कहा- महाराज के दर्शन हों तो कहना- उनकी ये दासी कभी उनके उपकार नहीं भूल सकेगी। सुदर्शनगढ़ देखने और यहाँ रहने की मेरी इच्छा पूरी कर महाराज ने फिर मुझे खरीद लिया। महाराज मेरे सामने कई बार अपनी जिन्दगी हारे थे, मैं आज उनके लिए, ख़ुदको, अपनी साँसों को हार गई। मैंने उन्हें टूटकर प्यार किया था और आज उसी प्यार में, मैं खुद टूट गई। औरत तो प्यार का प्रतिरूप होती है, प्रतिरूप क्या वह तो मुजस्सम प्यार होती है।

सुबह के नक्षत्रहीन आकाश की ओर, टूटे तारे की भाँति, देखते हुए वह बोली- तुम साक्षी रहना, आकाश! साक्षी रहना तुम, मेरे इस निश्छल और निस्वार्थ प्यार के। प्यार उत्सर्ग करता है, उपकार नहीं। प्यार तो जीवन जीने की एक शैली है लेकिन जिसने इस शैली को स्वीकारा, वह हमेशा जिन्दगी की लड़ाई हारा। मै जीवन हारकर भी जीत गई, क्योंकि मेरा प्यार तो ज़िन्दा है और युगों-युगों तक ज़िन्दा रहेगा। मेरे.... मेरे इन आँसुओं की बात महाराज से मत कहना। ये-ये मेरे वश में नहीं हैं।

कोतवाल ने मुँह फेर कर अपनी आँखों पर अपना हाथ रख लिया।

दरवाज़ा खुलते ही, रसकपूर उस अँधेरे में विलीन हो गई। रूपकोषा का वह विश्वमोही रूप अनन्त रूप मे समा गया।



मुआवज़ा तो हमें देना ही पड़ेगा। हमें अपनी ज़िन्दगी के एवज़ में अपने प्राणों की, रसकपूर की, कुर्बानी देनी ही पड़ेगी।

थोड़ा रुककर वे फिर बोले– हमने लड़ाई से लौटने पर अपनी रूपकोषा को सुदर्शनगढ़ देने का वचन दिया था।

महाराज पर बेहोशी छाने लगी थी। शहर कोतवाल सिर झुकाये महाराज के आदेश की प्रतीक्षा में खड़ा था।

इतने में महाराज चिल्लाये– ले जाओ रसकपूर को सुदर्शनगढ़ और सुबह होते–होते दीवार में चुनवा दो।

कोतवाल ने सिर झुकाया और चला गया।

महाराज ने टूटते शब्दों में कहा– फिर सबके दिलों में ठंडक पड़ जाएगी। शायद एक प्यार भरे दिलके खून से उन लोगों की आँखों में भरी नफ़रत धुल जाए। यह भी क्या दुनिया है जहाँ नफ़रत को मिटाने के लिए प्यार को कुर्बानी देनी पड़ती है।

और महाराज गहरी नींद में डूब गये।



रात के तीसरे पहर जब रसकपूर जनानी ड्योढ़ी से बाहर निकली तो उसने टूटती आवाज़ में पूछा– क्या महाराज ने बुलवाया है ?

– नहीं, महाराज ने हुक्म दिया है आपको सुदर्शनगढ़ पहुँचाने का।

एक फीकी हँसी रसकपूर के पीले ओठों को गुलाबी कर गई।

सामने खड़ी बैलगाड़ी में बैठ गई रसकपूर। हीरे–मोती

जड़ी, मखमली डोली में आई रसकपूर, खुली बैलगाड़ी में वैठी तो उसकी आँखें गीली हो गईं। उसने एक बार गर्दन घुमाकर शान से खड़े उस शान्त चन्द्रमहल को देखा।

वैलगाड़ी चल दी। रात्रि का अंतिम प्रहर बीतते-बीतते रसकपूर सुदर्शनगढ़ पहुँच गई। जब वो बैलगाड़ी से उत्तरी तो उसने कोतवाल से कहा- महाराज के दर्शन हों तो कहना- उनकी ये दासी कभी उनके उपकार नहीं भूल सकेगी। सुदर्शनगढ़ देखने और यहाँ रहने की मेरी इच्छा पूरी कर महाराज ने फिर मुझे ख़रीद लिया। महाराज मेरे सामने कई बार अपनी ज़िन्दगी हारे थे, मैं आज उनके लिए, ख़ुदको, अपनी साँसों को हार गई। मैंने उन्हें टूटकर प्यार किया था और आज उसी प्यार मे, मैं खुद टूट गई। औरत तो प्यार का प्रतिरूप होती है, प्रतिरूप क्या वह तो मुजस्सम प्यार होती है।

सुबह के नक्षत्रहीन आकाश की ओर, टूटे तारे की भाँति, देखते हुए वह बोली- तुम साक्षी रहना, आकाश! साक्षी रहना तुम, मेरे इस निश्छल और निस्वार्थ प्यार के। प्यार उत्सर्ग करता है, उपकार नहीं। प्यार तो जीवन जीने की एक शैली है लेकिन जिसने इस शैली को स्वीकारा, वह हमेशा जिन्दगी की लड़ाई हारा। मैं जीवन हारकर भी जीत गई, क्योकि मेरा प्यार तो ज़िन्दा है और युगों-युगों तक ज़िन्दा रहेगा। मेरे.... मेरे इन आँसुओं की बात महाराज से मत कहना। ये-ये मेरे वश में नहीं हैं।

कोतवाल ने मुँह फेर कर अपनी आँखों पर अपना हाथ रख लिया।

दरवाज़ा खुलते ही, रसकपूर उस अँधेरे में विलीन हो गई। रूपकोषा का वह विश्वमोही रूप अनन्त रूप में समा गया।



महाराज, झरती हुई आँखों से, टूटते हुए स्वर में बोले-ये-ये क्या कर दिया हमने ? हमने ये क्या कर दिया ? इससे आगे हम--हम कुछ नहीं देख सकते।

महारानी भटियाणी मे जैसे ही उनके आँसू पौंछने को हाथ बढ़ाया, महाराज ने उन्हें संकेत से मना कर दिया।

एक बार फिर उन्होंने सुदर्शनगढ़ को देखा।

वे टूटते-टूटते से बोले - और हम ज़िन्दा हैं। अभी तक ज़ेन्दा हैं।

सांसों के ढ़ेर में आग लगाकर जब ओठ हँसते हैं वो ज़िन्दगी की आखिरी हँसी होती है।

महाराज रोते-रोते मुसकरा उठे। वे धीरे से बोले-कहाँ हो, कहाँ------हो---तुम--तुम--रू-प-को-पा ?

इस बीच राजवैद्य ने औषधि को खरल में घोटकर तैयार कर लिया। सोने के चम्मच में उसे भरकर महाराज के पास आकर वे बोले- अन्नदाता ! ये औषधि ले लें। यह निश्चित रूप से आपके रोग को दूर कर देगी।

महाराज की खुली आँखों में झाँकते हुए जैसे ही राजवैद्य ने उनको छुआ, महाराज का शरीर एक ओर लुढ़क गया।

♠

एक बूढ़ा, दाढ़ी वाला पागल, लोग कहते हैं, वो चंदन था, बरसों तक, सुदर्शनगढ़ के इर्द-गिर्द घूमता हुआ यही गाता रहा -